पर्यावरण प्रदूषण के दुष्प्रभाव

उमेश राठौर

Paryavaran pradushan kay Dushprabhav

पर्यावरण प्रदूषण के दुष्प्रभाव

Umesh Rathora

उमेश राठौर

Umesh

Taqshasheela Prakashan, Delhi

तक्षशिला प्रकाशन

23/4762 अन्सारी रोड, दरियागंज,

नई दिल्ली-110 002

वन्दनीय माता देवकी
तथा पूज्यनीय पिता
श्री मोहन सिंह राठौर
के चरणों में सादर
समर्पित!

दो शब्द

पर्यावरण पर मेरी प्रथम रचना **''पर्यावरण प्रदूषण के दुष्प्रभाव''** आपके हाथ में है, जिसमें प्रमुखतया पर्यावरण प्रदूषण तथा उससे मानव स्वास्थ पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के बारे में सारगर्भित, तथ्यपूर्ण एवं प्रमाणिक सामग्री दी जा रही है।

पर्यावरण आज से समाज में एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन चुका है, तथा इसका क्षेत्र विस्तृतता एवं व्यापकता लिये है, अतः इसकी इस व्यापकता एवं विस्तृतता को दृष्टिगत रखते हुए इसे एक छोटे से किताब में समेट पाना सम्भव नहीं है।

जिस सन्दर्भ को लेकर मैंने इस किताब की रचना की है, उसी सन्दर्भ में मुझे लगता है कि यह एक पूर्ण रचना होने के बाद भी, अभी भी इसमें बहुत कुछ छूट गया है, जिन पर चर्चा की जानी आवश्यक थी। सभी कुछ इसी में समेट लेना इसलिए भी मुझे उचित नहीं लगा, कि प्रकाशन एवं कागज के लगातार बढ़ते दामों को देखते हुए बहुत बड़ा ग्रन्थ लिख देना न तो मंहगाई की दृष्टि से उचित है और न ही किताबों की आसमान छूती कीमतों को देखते हुए पाठक वर्ग के लिए सुविधाजनक ही है। मेरे विचार से पर्यावरण की इस एकपक्षीय सन्दर्भगत रचना में जो कुछ भी छूट गया है अथवा जिस विषय पर विस्तृत चर्चा नहीं हो पायी है उसे मैं अपनी नयी रचनाओं में समेटने के लिए प्रयासरत हूँ।

इस रचना को लिखने के लिए प्रेरित करने तथा प्रकाशित करने के लिए मैं **''तक्षशिला प्रकाशन''** तथा विशेषतः **तेजसिंह विष्ट** का हृदय से आभारी हूं, क्योंकि वे ही वे सज्जन पुरुष हैं जो मेरे भीतर सो चुके रचनाकार को जगाने में सक्षम रहे।

वैसे ''साहित्य'' मेरा जन्मजात शौक है, इसी के चलते मात्र पन्द्रह सोलह वर्ष की अवस्था में ही मेरा प्रथम सामाजिक उपन्यास **''उन आँखों में डूब न सकी''** प्रकाशित हो चुका था, इसके बाद मेरा दूसरा उपन्यास सामाजिक–धार्मिक–राजनैतिक कुव्यवस्थाओं के खिलाफ विद्रोह के रूप में **''इतिहास बदलना है''** ने भी प्रेस का मुँह देखा। आँचलिक उपन्यासों की श्रृंखला का मेरा एक अन्य उपन्यास **''बिखरती मणिराशि''** जब प्रेस में छप रहा है, तब मेरे साथ एक अप्रत्याशित घटना घटी, मेरे मूल हस्तलिखित दो दर्जन

के लगभग उपन्यास तथा अन्य अति विशेष रचनाएं चोरी हो गयीं, ज्ञात हुआ कि जिसे चोरों ने बाद में नदी में बहा दिया था, मूल पाण्डुलिपियों के साथ रफ प्रतियाँ भी चोर साथ उठा ले गये थे पूरी–पूरी रातें जागकर मैंने जो साहित्य सर्जन किया था, वह सब लुट चुका था। उसके बाद मात्र प्रेस में छप रही उपन्यास ''बिखरती मणिराशि'' ही एक मात्र रचना मेरे पास बच गयी थी। इस त्रासदी से मेरे अन्दर का रचनाकार मर सा गया था।

यद्यपि उसके बाद मैंने रोजी–रोटी को दृष्टिगत रखते हुए पत्रकार फिल्म, टेलीफिल्म, सीरियल लेखक के रूप में स्वयं को प्रतिष्ठित किया, पर किसी क्रमबद्ध ग्रन्थ को लिखने की कल्पना से ही मैं सिहर उठता था, पुरानी याद ताजा होकर मुझे विचलित सा कर देती थी।

समझ नहीं पा रहा हूँ, श्री तेजसिंह विष्ट जी का, उस मृतप्रायः रचनाकार को पुनः जीवित करने का कैसे साधुवाद दूँ और किस तरह उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित करूँ? साथ ही मैं ''पर्यावरण विकास समिति'' का आभार व्यक्त करता हूँ जिसके अध्ययन से मुझे इस रचना में पर्याप्त मदद मिली, इसके साथ ही ''गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान एवं पर्यावरण कक्ष'' वालों का भी आभारी हूँ, जिनके द्वारा प्रकाशित रचनाएं ''देश का पर्यावरण'' तथा ''हमारा पर्यावरण'' से अपनी इस रचना के कुछेक अन्तर्शीषकों में मैंने कहीं–कहीं पर आंशिक रूप से मदद ली है।

–उमेश राठौर

अनुक्रमणिका

1

पर्यावरण क्या है?

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ होता है (परि + आवरण) बाहरी आवरण, जिसका अर्थ सामान्यतया पृथ्वी के बाह्य आवरण से लगाया जाता था, बाद में शब्द की विशालता एवं व्यापकता बढ़ती चली गयी, तब इसके मूल स्वरूप में भी परिवर्तन आया और इसके अर्थ ने व्यापकता ग्रहण की। इस स्थिति में पहुँचने के उपरान्त पर्यावरण का सामान्य अर्थ भूमि—जल और वायु से लगाया जाने लगा।

पर्यावरण का सामान्य अर्थ यदि भूमि—जल—वायु पर केन्द्रित कर दिया जाय तो यह इस शब्द के साथ हास प्रहसन करने के समान होगा, क्योंकि वर्तमान में जिस रूप में पर्यावरण को लिया जा रहा है, वह इससे भी कहीं अधिक विस्तृत एवं व्यापक है तथा भूमि—जल—वायु के सम्बन्धों को ही पर्यावरण मान कर चलना कई पहलुओं के साथ अन्याय करना होगा। इस सन्दर्भ में अनेक अनछुए पहलू विस्मृत हो जाते हैं, जैसे जीव का जीव के साथ सम्बन्ध, निर्जीव व सजीव में होने वाले अनेक प्रकृतिजन्य परिवर्तन, पृथ्वी एवं उसके बाहरी भूमण्डल की गतिविधियाँ एवं परिवर्तन, भोजन, खान—पान, रहन—सहन, संस्कृति—सभ्यता, स्वास्थ आदि, अतः आज समय की माँग के अनुसार पर्यावरण में व्यापकता लानी आवश्यक है, इसके अध्ययन क्षेत्र को विस्तृत करने की आवश्यकता है। इसी सन्दर्भ में पर्यावरण को नये सिरे से परिभाषित करने की आवश्यकता भी है।

मेरे व्यक्तिगत विचारों से अथवा मेरी निज बुद्धि के अनुसार पर्यावरण को निम्न प्रकार से नये सिरे से परिभाषित किया जाना चाहिए।

''पर्यावरण-सजीव के साथ सजीव, निर्जीव के साथ निर्जीव, सजीव के साथ निर्जीव तथा अदृश्य के साथ अदृश्य व सदृश्य (सजीव-निर्जीव) के सौरमण्डलीय सामन्जस्यात्मक तथा सन्तुलनात्मक पारस्परिक सम्बन्धों का नाम है।''

इस नूतन परिभाषा में पर्यावरण के समस्त स्वरूप के दर्शन होते हैं, सजीव में मनुष्य, प्राणी, वनस्पतियाँ, वीषाणु तथा एक कोशीय जीव तक आ जाते हैं, इसी तरह निर्जीव में भूमि, जल, पत्थर, रसायनिक तत्व, भौतिक पदार्थ, दवाइयाँ, वस्त्र आदि समस्त पदार्थ सम्मिलित हो जाते हैं, अदृश्य से मेरा आशय वायु, गर्मी, गैसें, जाड़ा, भूकम्प, सौरमण्डलीय अदृश्य घटनाक्रम परिवर्तन आदि से है।

पर्यावरण के बिगड़ते, विकृत होते ढाँचे, स्वरूप को प्रदूषण कहा जाता है, मेरे विचार से प्रदूषण को भी निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है।

''पर्यावरण प्रदूषण-सजीव के साथ सजीव, निर्जीव के साथ निर्जीव, सजीव के साथ निर्जीव तथा अदृश्य के साथ अदृश्य व सदृश्य (सजीव-निर्जीव) के सौरमण्डलीय असामन्जस्यात्मक तथा असन्तुलनात्मक पारस्परिक सम्बन्धों को कहते हैं।''

वास्तविक तौर पर देखा जाय तो भी स्पष्ट होता है कि निर्जीव का सजीव व निर्जीव दोनों के साथ तथा दृश्य का अदृश्य के साथ गहरा पारस्परिक सम्बन्ध है, जिससे सन्तुलन तथा सामन्जस्य बना रहता है।

सजीव के साथ सजीव के सम्बन्धों को लें तो ज्ञात होता है कि एक कोशीय जीव को बहुकोशीय जीव खा जाते हैं, बहुकोशीय छोटे जीवों को जलचर–मछलियाँ, छिपकली, मैंढक आदि खा जाते हैं, मैढकों, छिपकलियों, मछलियों आदि को साँप, पक्षी आदि जीव खा जाते हैं, इन्हें बिल्ली, बाज, चील आदि खा जाते हैं, इस तरह प्रकृतिजन्य जो जीवों के एक दूसरे को खाने की प्रक्रिया है, इससे प्रकृति में एक सन्तुलन बना रहता है, किसी भी एक की कमी अथवा अधिकता कई घातक प्रभावों को छोड़ जाती है। उदाहरणार्थ यदि मैंढकों को बेतरह मारा जाये तो उससे कीड़े–मकोड़े अत्यधिक संख्या में बढ़ जायेंगे, जो पूरी की पूरी खेती को चौपट कर भयंकर अकाल ला सकते हैं, इसी तरह यदि धरती के पूरे साँपों को मार दिया जाय

तो उससे असंख्य संख्या में चूहे बढ़ जायेंगे, जो पूरी धरती के फसलों को चट कर महाविनाश खड़ा कर सकते हैं। इसी तरह यदि मानव भेड़—बकरियों का माँस खाना पूरी तरह छोड़ दे और उनकी तादाद बढ़ने दे तो कुछ ही वर्षों बाद पृथ्वी पर ऐसी भयंकर स्थिति पैदा हो जायेगी कि कहीं भी चरागाह नजर नहीं आयेंगे। इसलिए आवश्यक है कि इनके परस्पर सम्बन्ध सन्तुलनात्मक व सामन्जस्यात्मक बने रहें।

ठीक इसी तरह निर्जीव के भी निर्जीव के साथ अपने सम्बन्ध हैं। पानी नहीं बरसेगा तो धरती में भयंकर सूखा पड़ जायेगा तथा नदियों—श्रोतों का पानी सूखने लगेगा।

सजीव और निर्जीव के मध्य भी परस्पर सम्बन्ध बने हैं, धरती है तभी अन्न उगता है, धरती में वनस्पतियाँ उगती हैं और पत्तियों आदि माध्यम से वनस्पतियाँ पुनः धरती को पोषक तत्वों को लौटा देती हैं। जीव मात्र पानी पीता है और परिवर्तित रूप में उसे प्रकृति को लौटा देता है। मानव तो लगभग प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ का उपयोग करता है।

अदृश्य के अदृश्य के साथ एवं सदृश्य के बीच भी प्रगाढ़ सम्बन्ध हैं, जीवन के लिए वायु एक अति आवश्यक तत्व है, चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति बढ़ती है तो पृथ्वी में ज्वारभाटा आता है। मौसम गर्म होने पर हिम प्रदेश पिघलने लगते हैं, ठण्डा होने पर ठण्डे प्रदेशों में बर्फ जमनी प्रारम्भ हो जाती है। अदृश्य के साथ सदृश्य के सम्बन्धों को हम और प्रगाढ़ता दे सकते हैं। उदाहरणार्थ, मस्तिष्क में चिन्ताएं बढ़ती हैं तो मानसिक तनाव हो जाता है, एक दूसरे के प्रति अदृश्य प्रेम पागलपन की स्थिति भी ला सकता है, दुःख में आँसू निकलते हैं तथा कभी—कभी व्यक्ति की हृदयघात से मृत्यु भी हो जाती है, कभी कभार मानव मस्तिष्क में व्याप्त अद्भुत शक्ति आश्चर्यजनक कार्यों को अन्जाम दे देती है।

सौरमण्डलीय से तात्पर्य है कि वे सौरमण्डलीय घटनाक्रम जो पृथ्वी को प्रभावित करते हैं अथवा कर सकते हैं। यदि कोई बड़ा उल्टा पिण्ड पृथ्वी पर गिर जाय तो उससे अप्रत्याशित परिवर्तन होंगे। अन्य ग्रहों की स्थितियाँ बदल जाय तो उससे पृथ्वी पर भी भयंकर परिवर्तन होंगे। यदि सूर्य की अस्मिता समाप्त हो जाय तो उससे

भी पृथ्वी की स्थिति पूरी तरह परिवर्तित हो जायेगी। अतः इन सभी का अध्ययन पर्यावरण के अन्तर्गत किया जाना आवश्यक है।

पर्यावरण संरक्षण का अभिप्राय पर्यावरण को संरक्षित रखना होता है। इसी तरह पर्यावरण के सम्बन्ध में एक अन्य महत्वपूर्ण शब्द है, पर्यावरण संवर्धन, पर्यावरण संरक्षण से पर्यावरण संवर्धन शब्द अधिक विशेष एवं व्यापकता-युक्त है क्योंकि वर्तमान समय में पर्यावरण संरक्षण के साथ पर्यावरण संवर्धन की आवश्यकता अधिक है। पर्यावरण संवर्धन को निम्न तरह से परिभाषित किया जा सकता है।

''पर्यावरण संबर्धन-सजीव के साथ सजीव, निर्जीव के साथ निर्जीव, सजीव के साथ निर्जीव, तथा अदृश्य के साथ अदृश्य व सदृश्य (सजीव-निर्जीव) के मध्य उत्पन्न असन्तुलनात्मक सम्बन्धों को सन्तुलनात्मक बनाने का प्रयास करना है।

उपर्युक्त असन्तुलन मानव जन्य भी हो सकता है तथा प्रकृतिजन्य भी। भूकम्प, बाढ़, सूखा आदि को प्रकृतिजन्य असन्तुलन तथा इसी तरह औद्योगिक ईकाईयों से हुए जल प्रदूषण—वायु प्रदूषण—भूमि प्रदूषण को मानवजन्य असन्तुलन कहा जा सकता है। इन असन्तुलनों से यदि कहीं सामन्जस्यता की स्थिति में परिवर्तन आ रहा हो तो मानव का कर्तव्य बनता है कि वह उनमें पुनः सामन्यजस्य स्थापित करने व करवाने का प्रयास करे। पेड़ लगाना, पानी का संग्रह करना, प्रदूषणों को कम करने के विभिन्न प्रयास इसी स्तर के काम हैं।

आज के युग में पर्यावरण एक बहुत ही महत्वपूर्ण मुद्दा बन चुका है। अतः आवश्यकता है जन—जन तक पर्यावरण शिक्षा का विकास करना तथा लोगों में पर्यावरण की चेतना जागृत कर उन्हें पर्यावरण संरक्षण तथा पर्यावरण संवर्धन के लिए प्रेरित करने की।

भारतवर्ष अभी इस मामले में काफी पीछे है, क्योंकि भारतवर्ष मूलतः गांवों का देश है। गांवों की बात तो काफी दूर है, आज शहरों में निवास करने वाले अधिसंख्य व्यक्ति पर्यावरण के बारे में अनभिज्ञ हैं। पर्यावरण—पर्यावरण चिल्लाने वाले अधिसंख्य लोग यह भी नहीं जानते कि यह पर्यावरण क्या बला है?

यदि किसी ग्रामीण से पूछा जाय कि पर्यावरण क्या है? तो वह

झट उत्तर देता है, नर्सरी बनाना, वृक्षारोपण, शौचालय बनाना आदि आदि। ग्रामीण तो दूर जब अच्छे खासे पर्यावरण के जानकार भी वृक्षारोपण शब्द बोलते हैं तो बहुत अटपटा सा लगता है। कितना खेद का विषय है कि हम पौधरोपण को वृक्षारोपण कहते हैं, वृक्षारोपण का तात्पर्य होता है वृक्ष को रोपना। यह शब्द सुनकर ऐसा लगता है कि लोग भारी–भरकम वृक्ष को उखाड़कर दूसरे जगह रोपने जा रहे हैं, जब हम अभी तक अपनी भाषा को संयमित ही नहीं कर पाये हैं, अर्थ का अनर्थ निकलते शब्द का प्रयोग पौधरोपण के लिए कर रहे हैं तो लगता है कि हम सभी अभी काफी पीछे हैं।

इन सारी परिस्थितियों को देखते हुए और वर्तमान विश्व के बिगड़ते पर्यावरण के स्वरूप को देखते हुए आवश्यक है कि अब पर्यावरण की अधिक उपेक्षा न की जाय, इसकी महत्ता एवं आवश्यकता के आधार पर अब यह जरूरी हो गया कि पर्यावरण के प्रति जन चेतना के साथ–साथ इसे प्रारम्भिक शिक्षा पाठ्यक्रम से लेकर उच्च शिक्षा तक अनिवार्य पाठ्यक्रय घोषित किया जाय ताकि भावी पीढ़ी को पर्यावरण के प्रति सचेतक के रूप में स्थापित किया जा सके।

–उमेश राठौर

2
ऊर्जा और उसके दुष्प्रभाव

ऊर्जा और स्वास्थ भी एक–दूसरे से जुड़े पहलू हैं, खाना पकाने से लेकर प्रकाश, यातायात–ढुलाई–मनोरंजन, भौतिक संस्कृतिजन्य क्रियाकलाप आदि लगभग सभी कार्यों के लिए हम पूर्ण रूप से ऊर्जा पर आश्रित हैं। बिना ऊर्जा के सभ्य मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

अतः यह एक अकाट्य तर्क है कि जहाँ आज हम ऊर्जा के बिना मानव जीवन की कल्पना नहीं कर सकते वहीं दूसरी ऊर्जा की प्राप्ति, इस्तेमाल, आदि से हमारे स्वास्थ पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

हम संसार में पाये जाने वाले परम्परागत ईंधनों, वनों, कोयला, पारम्परिक गैस एवं तेल आदि से ऊर्जा प्राप्त करने हेतु लगातार उसका विदोहन करते चले आ रहे हैं। भारत सहित दुनियाँ के अनेक देशों के सामने वनों एवं परम्परागत ईंधनों का अन्धाधुन्ध उपयोग, दोहन तथा विनाश के चलते आज उसका अकाल सा पड़ गया है। आज भी जलाऊ लकड़ी तथा इमारती लकड़ी के लिए सर्वाधिक वनों का विनाश किया जा रहा है, इसके सिवाय भौतिक संसाधनों की प्राप्ति हेतु भी वनों का भयंकर रूप से विदोहन अनवरत रूप से जारी है।

जलावन लकड़ी के अभाव में प्रति वर्ष कृषि एवं बागवानी के लिए अत्यन्त उपयोगी करोड़ों टन गोबर सुखाकर जलाऊ ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा है। आधुनिक ऊर्जा श्रोतों में गैस, डीजल, मिट्टी तेल, पन बिजली, ताप बिजली, परमाणु बिजली, सूर्य ऊर्जा आदि का नाम लिया जा सकता है।
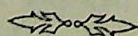
3

भोजन और ऊर्जा

भोजन और ऊर्जा एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं, क्योंकि बिना ऊर्जा के हम भोजन नहीं बना सकते और भोजन के बिना जीवन असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। वर्तमान में भोजन बनाने के लिए हम ऊर्जा के विभिन्न रूपों का इस्तेमाल करने लगे हैं जैसे धूप–चूल्हा, प्राकृतिक गैस, कृत्रिम गैस, मिट्टी तेल, गोबर·गैस, कोयला, बिजली आदि। भोजन बनाने हेतु ईंधन के रूप में जलाऊ लकड़ी, घास·फूस, गोबर आदि का प्रयोग आंदिम सभ्यता युग से ही प्रारम्भ हो चुका था।

आज जहाँ ईंधन के नये–नये रूप सामने आये हैं तथा इसमें भविष्य में अनेक सम्भावनाएं भी हैं, वहीं दूसरी ओर आज भी दुनियां के तमाम विकासशील राष्ट्रों की जनता परम्परागत ईंधनों पर ही अधिक निर्भर है। परम्परागत ईंधनों में जलाऊ लकड़ी, कोयला, गोबर के कण्डे आदि प्रमुख हैं।

अध्ययनों से पता चला है कि जलावन लकड़ी व अन्य संसाधन, कोयला, गैस, खनिज तेल अत्यधिक प्रदूषक हैं। जलावन के धुएं में सबसे हानिकारक तथा खतरनाक प्रदूषक तत्व टोटल सस्पेन्डेड पार्टिकुलेट (टी०एस०पी०) तथा बैन्जों (अ) पाइरीन (पी०ए०बी०) विद्यमान रहते हैं। इसके सिवाय अन्य हानिकारक तत्वों में सल्फर· डाइआक्साइड, नाइट्रोजन· आक्साइड, आर्गेनिक्स, कार्बन·मोनो·आक्साइड अन्य प्रमुख तत्व हैं।

अहमदाबाद की नेशनल इन्सट्यूड ऑफ आक्युपेशनल हेल्थ

के श्री ए०एल० अग्रवाल, अमेरिका की संस्था ईस्ट–वेस्ट सेन्टर के किर्कस्मिथ तथा बल्लभ विद्यालय की ज्योति सोलर, एनर्जी इंस्टिट्यूड से सम्बद्ध श्री आर०एम० दवे ने बीसवीं शताब्दी के अस्सी के दशक में रसोईघरों में भोजन बनाने हेतु जलावन के प्रभावों की जांच के लिए आणंद जिले के तीन दर्जन घरों में एक सर्वेक्षण किया तथा टी०एस०पी० तथा बी०ए०पी० को नापा, जिसके परिणाम अत्यन्त डरावने तथा भयानक निकले।

उक्त जांच में रसोईघर में खाना बनाते समय रसोईया महिलाओं के फेफड़ों में टी०एस०पी० प्रति घन मीटर 1,110 से 56,600 औसत 7000 माइक्रोग्राम तक पाया गया, इसके विपरीत विश्व स्वास्थ संगठन से 150 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर मात्रा ही मान्यताप्राप्त है, शोधकर्त्ताओं ने बी०ए०पी० का परिमाण औसतन 3,850 नानोग्राम प्रति घन मीटर पाया।

बी०ए०पी० को कैंसर का प्रमुख कारण तत्व माना गया है। इसके मिश्र तत्व तब और भी जानलेवा साबित होते हैं, जब चूल्हों में जलने वाला ईंधन, कच्चा, गीला अथवा नमीयुक्त हो, क्योंकि इन तत्वों का उत्पादन ईंधन में उपस्थित वाष्पशील द्रव्य के प्रमाण पर निर्भर करता है।

एक अन्य आधार पर स्पष्ट होता है कि अनेक घरों में, जहां जलावन का उपयोग किया जाता है, 20 पैकेट से पचास पैकेट सिगरेटों के बराबर पी०ए०बी० विद्यमान रहता है, धुएं में पाये जाने वाले अन्य घातक तत्वों में कार्बन–मोनो–आक्साइड, फार्मल्डीहाइड भी स्वास्थ की दृष्टि से अत्यधिक खतरनाक हैं।

बीसवीं शताब्दी के पचासवें दशक में लन्दन में धुएं से दम घुटने की सबसे भयानक घटना घटी थी, जिसके कारण लम्बी बीमारी से मृत्यु को प्राप्त होने वालों की संख्या में अस्सी प्रतिशत वृद्धि पायी गयी थी। जिसका मुख्य कारण टी०एस०पी० का बढ़ जाना घोषित किया गया था, पर इतनी मात्रा तो भारत वर्ष के जलावन वाले चौकों–रसोईघरों में भी विद्यमान रहती है। अन्तर केवल इतना है कि लन्दन में यह मात्रा कई दिनों तक एक समान रही थी जबकि यहां के रसोईघरों में यह मात्रा प्रतिदिन तीन–चार घंटे विद्यमान रहती है।

उक्त आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि रसोई में जलावन का उपयोग करने वाले घरों में खाना बनाने वाली महिलाओं की स्वास्थ की स्थिति कितनी जानलेवा बनती जाती होगी।

जलावन के प्रभावों का एक ह्रदय रोग कोर पल्मोनेल पर परीक्षण में पाया गया कि इससे ह्रदय का निचला—दाहिना भाग फूल जाता है। कोर पल्मोनेल रोग का मुख्य कारण धूम्रपान माना जाता है। जो महिलाएं धूम्रपान नहीं करती हैं, उनमें पाये जाने वाले इस रोग का कारण ही रसोई घर का धुँआ होता है। फेफड़ों में असाधारण रूप से हवा भर जाने व फूल जाने की बीमारी ब्रोकाइटिस तथा एम्फीसेमा का प्रमुख कारण भी धुँआ ही है।

धुँए में हजारों घातक़ जटिल तत्वों का सम्मिश्रण होता है। इसमें पाया जाना वाला कार्बन—मोनोआक्साइड एक खतरनाक तत्व है, जो श्वास क्रिया के माध्यम से शरीर में पहुँच कर हीमोग्लोबीन के साथ मिलकर कार्बोक्सीहीमोग्लोबीन (एच०वी०सी०ओ०) का निर्माण करता है।

रक्त में आक्सीजन का संचार करने वाला तत्व हीमोग्लोबीन आक्सीजन के बजाय कार्बन-मोनो-आक्साइड के प्रति अधिक संवेदनशील होता है। उक्त क्रिया में शरीर में पाये जाने वाले शुद्ध हीमोग्लोबीन की मात्रा घटती जाती है, जो ह्रदय रोगों तथा गर्भाशय की विकृत्तियों तथा कैन्सर क्षमता बढ़ाने में कारगर सिद्ध होता है।

हीमोग्लोबीन की कमी से एनीमीया हो जाता है, यानि रक्त के महत्वपूर्ण लालकण कम हो जाते हैं। इससे महिलाएं रक्ताल्पता का शिकार हो जाती हैं।

एक अध्ययन के अनुसार हमारे देश में कम उम्र की लड़कियाँ चालीस से साठ प्रतिशत, गर्भवती महिलाएं पचास प्रतिशत तथा वयस्क महिलाओं में 25 से चालीस प्रतिशत तक महिलाएं रक्ताल्पता की शिकार हैं।

गर्भावस्था में हीमोग्लोबीन की माँग, महिलाओं में अप्रत्याशित रूप से बढ़ जाती है तब कार्बन मोनो आक्साइड का असर तुरन्त

होने लगता है, इससे गर्भस्थ शिशु का वजन कम हो जाना, असमय या देर से पैदा होना, विकृत हो जाना, अथवा जन्म के एक सप्ताह के भीतर मर जाना आदि प्रभाव देखे गये हैं। रक्त की प्रभाव क्षमता घटने से शरीर अन्य अनेक खतरनाक बीमारियों का भी घर बन जाता है।

धुएं में पाया जाने वाला अन्य घातक तत्व फार्मल्डीहाइड के कारण गले, नाक, आँख में जलन होती है, इसका खतरनाक असर फेफड़ों की नसों को प्रभावित करता है तथा अनेकानेक चर्म रोगों का कारण बनता है। पाँच पी०पी०एम० से अधिक फार्मल्डीहाइड की मात्रा बर्दास्त से बाहर होती है। इस सीमा तक अथवा इससे अधिक मात्रा वाले धुएं से दम घुटकर तत्काल मृत्यु हो जाती है। फार्मल्डीहाइड की मात्र 0.1 से 1 पी०पी०एम० की मात्रा ही आँख–नाक–मुँह में जलन उत्पन्न करने में सक्षम होती है।

अमेरिका का "टेनेसी घाटी प्राधिकरण" जो, कभी लकड़ी से चलने वाले चूल्हों पर सब्सीडी देता था, रसोई में धुएं से उत्पन्न हानियों को मध्यनजर रखकर अब प्रति वर्ग किलोमीटर 240 से अधिक चूल्हे लगाने के भी पक्ष में नहीं है। इसी तरह के निरोधात्मक उपाय यूरोप, न्यूजीलैण्ड आदि विकसित देश भी अपनाने लगे हैं। इसके विपरीत लगातार चूल्हों को आधुनिक से अत्याधुनिक बनाये जाने की प्रक्रिया निरन्तर चली आ रही है। अमेरिका के ही एक अन्य कम्पनी ने चूल्हों में "कैटेलेटिक कन्वर्टर" लगाने में सफलता प्राप्त की है, यह यन्त्र अधजले जलावन को आक्साइड में बदलकर धुँआ कम करता है तथा ऊर्जा को अप्रत्याशित रूप से बढ़ाता है।

रसोई के धुंए से मानव स्वास्थ पर पड़ने वाले कुप्रभाव को रोकने हेतु वैकल्पिक संसाधनों का इस्तेमाल अति आवश्यक है। इसके बाद भी यदि जलावन से खाना बनाने की मजबूरी हो तो उसमें ऐसे प्रयास किये जाने आवश्यक हैं, जिनसे धुँआ कम से कम निकले, रसोई घर में जलाया जाने वाला जलावन ठीक तरह का हो वह गीला, नम, कच्चा अथवा अधिक धुँआ देने वाला न हो, चूल्हे ठीक बने हो तथा रसोई घर हवादार हो, जलावन के रूप में यदि लकड़ी प्रयुक्त की जा रही हो, तो कोशिश की जानी

चाहिए कि जलावन के लिए, उन्हीं प्रजातियों की वनस्पतियों, पेड़ों की लकड़ियाँ अधिक प्रयुक्त की जाय, जिनसे धुंआ कम निकलता हो। कैथा, धामड़ा, बबूल आदि की लकड़ी के जलावन से धुँआ कम निकलता है, सामाजिक बानिकी में जलावन ईंधन के रूप में इस प्रकार के पौधरोपण को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

जिन क्षेत्रों में अन्य संसाधनों का अभाव हो और रसोई जलावन पर ही आश्रित हो, उन घरों में निर्धूम चूल्हे उपयोगी हो सकते हैं। निर्धूम चूल्हों की स्थापना से पूर्व यह देख लेना आवश्यक है कि चूल्हे दोषपूर्ण न हो, जलावन उसमें ज्यादा न लगे, चिमनी सही ढंग से लगी हो ताकि धुँआ वापस अन्दर न आने पाये अथवा चिमनी के अन्दर कालिख–राख न भरे, श्रेष्ठ चूल्हे की विशेषता होती है, उसमें ईंधन कम लगता है तथा कम ईंधन में आँच अधिक मिलती है, ज्यादा समय जलता है, उसमें से प्रदूषक तत्व कम निकलते हैं। इसके बाद धुंए की निकासी का समुचित प्रबन्ध होना भी आवश्यक है।

कम प्रदूषित चूल्हे बनाने का प्रयास हमारे देश में सर्वप्रथम बीसवीं शताब्दी के चालीसवें दशक में, हैदराबाद इन्जीनियरिंग रिसर्च लैबोरेटरी ने एक धुँआ रहित चूल्हा बनाकर किया, उसी नमूने के आधार पर नया डिजायन बनाकर पचासवें दशक में श्री एस०पी० राजू ने एक और बेहतर प्रयास किया तथा एक पुस्तक ''स्मोकलेस किचन फॉर दी मिलियंस'' भी लिखी, इन्हीं नमूनों पर बाद में अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ तथा गांधी निकेतन आश्रम ने ''मगन चूल्हा'' बनाया, इस कार्य में पांडुचेरी के टाटा एनर्जी रिसर्च इंस्टिट्यूड तथा बंगलौर के सेन्ट्रल पाकर रिसर्च इन्सिट्यूड के बने चूल्हों को नजर अन्दाज करना समुचित नहीं होगा। इसी क्रम में चंडीगढ़ के पास स्थित नाडा गाँव के वास्तुविद् मधु सरीन ने ''नाडा'' नामक चूल्हा बनाया। उसके उपरान्त कई अन्य चूल्हे भी आ चुके हैं, परन्तु अभी तक तकनीकि अथवा सुविधा की दृष्टि से किसी को भी सर्वश्रेष्ठ चूल्हा नहीं कहा जा सकता, इस स्तर पर और भी गहन कार्य करने की आवश्यकता है।

जलावन के रूप में गोबर तथा खरपतवार का उपयोग सही नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि इससे जहां ज्यादा धुँआ निकलता

है, वहीं दूसरी ओर इसकी आँच भी तेज नहीं होती है। इसमें प्रदूषक तत्वों की मात्रा अधिक होने से, वे पूरी तरह भी नहीं जल पाते हैं, जो जलता भी है वह कम आग में जलता है और यह तर्कसंगत है, कि जो जलावन कम आग में जलता है, वह उतना ही अधिक प्रदूषक तत्वों को बाहर फेंकता है। घरेलू जलावन के प्रदूषण को कम करने हेतु रसोईघरों को खुला और खूब हवादार बनाया जाना अति आवश्यक है।

जलावन के रूप में कोयले का प्रयोग भी काफी हानिकारक है। इनकी हानिकारकता तब और अधिक बढ़ जाती है, जब कोयले की गुणवत्ता घटिया होती है।

कोयले के जलावन में हानिकारक गैस सल्फरडाईआक्साइड की मात्रा सर्वाधिक होती है, इससे ब्रांकाइटिस, दमा व सांस के रोग होते हैं, कोयले में प्रायः गन्धक भी पाया जाता है, कोयले के धुँए में उड़ने वाली लगभग एक तिहाई राख में आर्सनिक, पारा, फ्लोरिन, कैडमियम, सीसा कोमियम, वैनेडियम मैंगनीज, बेरेलियम जैसे घातक खतरनाक तत्व भी विद्यमान रहते हैं। मात्र एक टन कोयले को जलाने से 0.693 टन कार्बनडाइआक्साइड के रूप में कार्बन वातावरण में फैलता है।

जलावन से चलने वाले चूल्हों के समान ही गैस, गोबर, गैस, प्राकृतिक गैस, मिट्टी तेल आदि से भोजन बनाना कम हानिकारक नहीं है। यद्यपि एक टन अपरिष्कृत पेट्रोलियम से 0.769 टन कार्बन तथा प्रति दस लाख घनमीटर प्राकृतिक गैस से 524 टन कार्बन वातावरण में फैलता है।

बिजली तथा धूप चूल्हा, तथा अन्य कृत्रिम ऊर्जा श्रोतों से प्राप्त ऊर्जा का प्रयोग सर्वोत्तम है, परन्तु विद्युत उत्पादन करने हेतु जिन संसाधनों का उपयोग किया जाता है, वे पर्यावरण की दृष्टि से और भी भयावहता से भरे पड़े हैं।

ताप बिजलीघरों से बिजली पैदा करने पर वातावरण बुरी तरह दूषित होता है, बाँध निर्माण भी पर्यावरण की दृष्टि से अत्यधिक हानिकारक है, परमाणु विद्युत् तो पर्यावरणिक दृष्टि से अत्यन्त घातक एवं खर्चीली है।

कोयले तथा मिट्टी तेल के भण्डार भी सीमित हैं, जिसे भी स्थाई विकल्प नहीं बनाया जा सकता है। 'प्रोड्यूसर गैस' अच्छा विकल्प तो है पर इसके कचरे को निपटाना एक समस्या है। प्रोड्यूसर गैस की ही तरह मेथानोल या इथानोल को भी ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाना अच्छा है, पर इसका उत्पादन काफी खर्चीला है। लकड़ी की कोयले की बात करना भी! वनों को उजाड़ने का ही एक साधन है।

गोबर गैस, पवन ऊर्जा, मानवीय ऊर्जा तथा सौर–ऊर्जा पारम्परिक ऊर्जा श्रोतों के विकल्प बन सकते हैं, परन्तु इस स्तर पर जिस ढंग से कछुवा चाल से भी अधिक मध्यम चाल से कार्य चल रहा है, उस आधार पर इसे उपेक्षित ऊर्जा ही कहा जा सकता है। इस सन्दर्भ में भारत सहित तमाम विकासशील देशों को आगे आना होगा। इस सुलभ ऊर्जा की उपेक्षा मानव की भावी एवं वर्तमान पीढ़ी को काफी महंगी पड़ेगी।
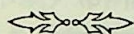
4

ताप बिजलीघर के दुष्प्रभाव

हमारे देश में बिजली पैदा करने वाले उपक्रमों में ताप बिजलीघर प्रमुख हैं, मात्र 500 मेगावाट क्षमता का ताप बिजलीघर प्रतिदिन दस टन सल्फरडाईआक्साइड, 53 टन नाइट्रोजन आक्साइड तथा 73 टन पार्टिक्युलेट मैटर वातावरण में फैलाता है। कोयला जलने से जो राख और कचरा निकलता है, उसका निपटान भी एक मुसीबत है, इसमें अनेक रेडियोधर्मी पदार्थ भी पाये जाते हैं, जो स्वास्थ के लिए घातक होते हैं।

उक्त रेडियोधर्मी पदार्थों में आर्सनिक, कैडमियम, क्रोमियम, पारा, सीसा, मैगनीज, वैनेडियम फ्लोरिन, बेरिलियम जैसे अनेकों विषैले तत्व विद्यमान रहते हैं। ये तत्व पर्याप्त मात्रा में ताप बिजलीघरों की चिमनियों से उड़ने वाले धुंए में विद्यमान रहते हैं, जो घातक गैसों के साथ और भी जानलेवा साबित होते हैं।

सिगरौली क्षेत्र में 830 मेगावाट क्षमता वाले विद्युत् ताप बिजलीघरों के 30 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में पर्यावरणिक सन्दर्भगत अध्ययन करने पर पाया गया, कि उक्त क्षेत्र में सल्फरडाईआक्साइड की घनता 1.3 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर (मा.ग्रा.घ.मी.) से 1.5 मा. ग्रा. घनमीटर, सस्पेंडेड पार्टिक्युलेट मैटर (एस.पी.एम.) का स्तर 0.5 मा०ग्रा० घन मीटर तक पाया गया, इस हिसाब में कोयले की धूल, वाहनों के धुंए व विभिन्न उद्योगों से निकलने वाले तत्वों का समावेश नहीं है। कुछ स्थानों पर गैस की घनता इससे दुगुनी–तिगुनी तक पायी गयी।

नाइट्रोजन आक्साइड तथा सल्फर-डाई-आक्साइड, वायुमण्डल

में पहुंचकर नाइट्रिक और सल्फ्यूरिक एसिड में बदल जाते हैं, जो बाद में बारिश के पानी में मिलकर धरती पर तेजाबी वर्षा करते हैं, तेजाबी वर्षा से यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका के बड़े–बड़े वन प्रदेश, झील खत्म हो गये हैं। मात्र स्वीडन में 15,000 से अधिक झीलें तेजाबी हो चुकी हैं।

ताप बिजली घरों के आसपास रहने वाले लोगों की आंखों में जलन, गले में खरांस व पीड़ा, दम घुटने की सी पूर्व अवस्था, बैचेनी, श्वास की बीमारियां, फेफड़ों का कमजोर अथवा खराब हो जाना, भूख मिटना बैचेनी बढ़ना, मानसिक तनाव, थकान जैसे लक्षण पाये जाते हैं।

उक्त आधार पर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि ये ताप बिजलीघर हमारे स्वास्थ, वातावरण एवं भूमि के लिए कितने अधिक हानिकारक होते हैं।
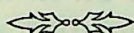
5

पन बिजली के दुष्प्रभाव

सम्पूर्ण विश्व में ऊर्जा के सन्दर्भ में पन बिजली परियोजनाओं की अग्रणी भूमिका है। यह ऊर्जा का एक प्रमुख स्रोत है। पन बिजली प्राप्त करने के लिए मुख्यतः बांधों का निर्माण किया जाता है। बांध पर्यावरणिक दृष्टि से अत्यन्त घातक एवं डरावने हैं। जो परियोजनाएं पर्यावरण को आघात पहुंचाती हैं, वे स्वास्थ पर भी व्यापक प्रभाव डालती हैं। बाँधों पर किये व्यापक अध्ययन एवं आंकड़े बताते हैं कि बांधों से शान्त पृथ्वी पर हलचल प्रारम्भ हो जाती है, जिसकी परिणति बिन बुलाये भूकम्प एवं तबाही होती है। बाँधों में भारी मात्रा में जल का जमाव होने से भूकम्प की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं। बांध यदि भूकम्प सक्रियता क्षेत्र में बना हो, उसके नीचे भूमि चट्टानी अथवा दरारों युक्त हो, भीतरी चट्टानें फटने वाली हो या फिर जिन पर्वत श्रृंखलाओं में बाँध को बाँधा जा रहा हो, वे खोखली हों अथवा बन्धभूमि की उम्र कम हो। बाँधों में पानी के जमाव से पानी मिट्टी के छिद्रों अथवा चट्टानी दरारों से रिसकर पृथ्वी के तल में स्थित डंकन लावा में चूने लगता है, जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप धरती के अन्दर गैस बननी प्रारम्भ होती है, यही गैस पृथ्वी में कम्पन–झटके अथवा जबरदस्ती बुलाये या पैदा किये गये भूकम्पों का कारण बनती है।

बड़े बाँधों के कारण संसार में अनेकों प्रलयकारी भूकम्प आये हैं। प्रमुख घटनाओं को ही लें तो 1918 से 1958 के मध्य अमेरिका में भूकम्प के कारण पांच बड़े बाँध टूटे थे, 1970 से 1983 के बीच कोलम्बिया, भारत तथा अमेरिका में तीन–तीन बाँध, अर्जेन्टाइना, मोजांबीक, नेया, साइब्रेरिया में एक–एक बांध टूटा था। 1979 में

भारत का मौरवी बाँध टूटा था। बाँध के भूकम्पों की पूरकता के लिए भातसा बाँध की चर्चा करना ही पर्याप्त होगी। बम्बई से 107 किमी. दूर भूकम्प निक्रिय, जिला ठाड़े के भातसाही नदी पर भातसा बाँध बनने के साथ ही वह क्षेत्र भूकम्प सक्रियतावाला क्षेत्र बन गया। उक्त भातसा बाँध के कारण सन् 1983 के मात्र जुलाई और अगस्त दो माहों में, भूकम्प के नौ सौ (900) झटके दर्ज किये गये, जिनकी घनता 4.2 थी, 15 सितम्बर को आये झटके से भयभीत (50,000) पचास हजार लोग गांव छोड़कर भागे थे। इस आधार पर बाँधों की भयानकता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। बाँधों के कारण आने वाले भूकम्प तथा बाँध टूटने से हुए प्रत्यक्ष विनाश तथा उसके बाद होने वाली महामारियाँ, बीमारियाँ, मानव मात्र के लिए जानलेवा होती हैं।

बाँधो से निकलने वाली नहरें भी पर्यावरणिक दृष्टि से अत्यन्त घातक हैं। यद्यपि प्रारम्भ में एक–डेढ़ दशक तक इसके परिणाम बहुत अच्छे निकलते हैं। भूमि को समुचित सिंचाई मिलने के कारण पैदावार अप्रत्याशित रूप से बढ़ जाती है। पर उसके बाद ये नहरें अपना असली रूप दिखाना प्रारम्भ कर देती हैं। इनके कारण भूमि में पानी की सतह धीरे–धीरे ऊपर उठने लगती है, जिससे भूमि में खारापन, चूना, क्लोराइड, ताँबा, जस्ता, मैगजीन, मालिब्डिनम आदि धातु तत्वों की मात्रा अप्रत्याशित रूप से बढ़ जाती है। जो प्राणिमात्र, फसल, भूमि एवं वनस्पतियों के लिए अत्यन्त हानिकारक होती हैं। इस सिंचाई से धीरे धीरे फसल घट जाती है तथा फसलों में उपरोक्त धातु तत्वओं की मात्रा बढ़ जाती है, जो स्वास्थ के लिए हानिकारक हैं।

नहरों के कारण बाद में भूमि जल–खार तथा धातु तत्वों से मृतप्रायः होनी प्रारम्भ हो जाती है, मिट्टी में पानी का स्तर उठने से मिट्टी की नमी को जज्ब करने की क्षमता धीरे–धीरे क्षीण होकर नष्ट हो जाती है, जिस कारण थोड़ी सी वर्षा से ही भयंकर बाढ़ें आती हैं, बाढ़ जहां प्रत्यक्ष रूप से भारी जन–धन का नाश करती है, वहीं दूसरी ओर इसके गुजरने के बाद महामारियां तथा अनेकों व्याधियों का आगमन हो जाता है।

बाँधों से निकलने वाली नहरों की भयानकता का अनुमान इसी

आंकड़े से लगाया जा सकता है, कि 1975 में होशंगाबाद के तवा बाँध के कारण कृषि योग्य भूमि में जमा हो चुके खारे जल को उलीचने के लिए भारत सरकार को तीन सौ करोड़ रुपये के नलकूप लगाने पड़े थे। उस समय 1 करोड़ रुपये की क्षमता आज से कई गुना अधिक थी। इसके साथ ही एक अन्य अध्ययन में पाया गया, कि मात्र भाखड़ा नहर से उस क्षेत्र में पानी का जल स्तर प्रति वर्ष एक मीटर की गति से ऊपर उठ रहा था, तथा खारे पानी से उस क्षेत्र की 75 प्रतिशत भूमि कृषि के अयोग्य हो चुकी थी।

अन्य विगत आंकड़ों पर नजर डालें तो, तस्वीर एकदम डरावनी है। बम्बई से 450 किमी. दक्षिण पूर्व स्थित कोयनानगर जहां कभी भूकम्प नहीं आये थे, बाँध बनने के मात्र पाँच वर्ष की अवधि में 10 दिसम्बर 1967 में भयंकर भूकम्प आया, जिसमें 200 लोगों की जानें गयीं, 1500 लोग घायल हुए तथा हजारों बेघर हुए। यद्यपि बाँध बनने के बाद ही इस क्षेत्र में भूकम्प के छोटे–छोटे झटके आने प्रारम्भ हो गये थे।

बाँधों के टूटने के कारण तबाही के बाद महामारियाँ एवं व्याधियाँ अचानक उत्पन्न हो जाती हैं। सन् 1979 में गुजरात का माचू बाँध टूटा, जिससे सैंकड़ों लोग मारे गये और हजारों घर बरबाद हो गये, इसी तरह मध्य प्रदेश के भोपाल का बारना बाँध रिसने से फट गया था। कर्नाटक के गोपीनाथम 20 लाख घन मीटर पानी की क्षमता वाला तालाब, मात्र एक साल की अवधि में 19 अक्टूबर 1981 को टूट गया था, जिससे पूरा गोपीनाथम गाँव बह गया, जिसमें अनेकों लोग मारे गये तथा कई हजार लोग बेघर हो गये थे।

बाँध से भूमि, खनिज सम्पदा, जड़ी-बूटियाँ, वन एवं वनस्पतियाँ आदि पानी में दफन हो जाती हैं। क्षेत्र से विस्थापित लोगों को अन्यत्र भेजा जाता है। जिससे विस्थापित लोगों का प्रकृति से जीवन का सन्तुलन विकृत हो जाता है।

उक्त परिचर्चा बाँधों के कारण अप्रत्यक्ष रूप से मानव स्वास्थ को प्रभावित करने से सन्दर्भित है, उक्त घटनाएं ऐसी परिस्थितियां बनाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप महामारियाँ–बीमारियां फैलने से मानव का स्वास्थ प्रभावित होता है। बाँधों द्वारा इन परिस्थितियों को उत्पन्न करने के सिवाय, प्रत्यक्षतः मानव स्वास्थ को प्रभावित करने

वाली परिस्थितियां भी पैदा की जाती हैं, जिसकी क्षमता उनमें हमेशा विद्यमान रहती हैं।

बाँधों तथा उससे निकलने वाली नहरों तथा उसके द्वारा होने वाले पानी का रिसाव एवं जमाव मानव स्वास्थ के लिए एक खतरनाक घंटी है। पानी के जमाव के कारण मच्छर तथा अन्य स्वास्थ के लिए घातक जीवाणुओं को पनपने फैलने का मौका मिलता है। बाँधों ने दुनियां को कई खतरनाक घातक बीमारियाँ दी हैं। मलेरिया के सिवाय असाध्य बीमारी जापानी इन्सेफीलाइटिस, फाइलेरिया और एन.सी. फिलाइट्स नामक जानलेवा मस्तिष्क ज्वर तथा फ्लूरोरिस नामक घातक बीमारियों की मूल जड़ ही बाँध तथा उससे निकलने वाली नहरें हैं।

मलेरिया के पिछले आंकड़े देखें जायं तो वे अत्यन्त डरावने हैं, सन् 1952 में भारत में मलेरिया से 10 करोड़ लोग मरे थे। बाद में यह संख्या घटती चली गयी, 1965 में मलेरिया से एक लाख लोग मरे। साठवें दशक के बाद हमारे देश में मलेरिया उन्मूलन का कार्यक्रम बड़े जोर शोर से चलाया गया, डी०डी०टी० और बाद में आर्गेनोफास्फेट और कार्बमेट जैसी दवाईयों का छिड़काव किया जाने लगा। जिससे मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम तेजी से फैला और इस बीच ऐसा लगा कि सचमुच हमारे देश में मलेरिया का उन्मूलन हो चुका है। परन्तु यह महज हमारा भ्रम था। 1970 में अचानक बड़े जोर–शोर से मलेरिया वापस चला आया। इसके लिए सर्वाधिक जिम्मेदार बाँध और सिंचाई व्यवस्था थी। दूसरे मलेरिया के कीट में जबरदस्त कीटनाशक प्रतिरोध क्षमता पायी जाती है। मलेरिया का मच्छर धीरे–धीरे कम से अधिक शक्ति वाले कीटनाशकों को पचाने लगता है। कीटनाशकों की बढ़ती शक्ति के अनुरूप मलेरिया के मच्छरों ने भी अपनी प्रतिरोधात्मक क्षमता, उसी गति से बढ़ाई, आज स्थिति यह है कि मलेरिया का मच्छर डी०डी०टी०, मेंलाथियान, एच०सी०एच०, आर्गेनोफास्फेट, कार्बमेट कम्पाउंड तथा फेनिट्रोथियान जैसे कीटनाशकों को पचाने लगा है।

1970 में पुनः वापस आये मलेरिया ने पुनः धीरे–धीरे अपना खूनी पंजा गड़ाना प्रारम्भ किया, 1976 में मलेरिया के रोगियों की संख्या 64 लाख तक पहुँच गयी। आज स्थिति यह है, कि हम मलेरिया

उन्मूलन की कल्पना ही नहीं कर सकते यह कल्पना हास्याप्रद सी लगती है। मलेरिया के मच्छर ने जिस तरह कीटनाशकों के प्रति अपनी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाई, उसी तरह मलेरिया के जीवाणुओं ने भी दवा के प्रति अपनी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ायी, नये किस्म का मलेरिया जिसे 'प्लासमेडियम फैल्सिपैरम' के नाम से जाना जाता है, उसने मलेरिया की कारगर दवा क्लोरोक्वीन पर भी विजय प्राप्त कर ली है। अब इस बीमारी में क्लोरोक्वीन बेअसर हो चुकी है। मलेरिया के लिए जितनी शक्तिशाली दवाइयाँ निर्मित की जाती हैं, इसकी प्रतिरोधक क्षमता भी उसी गति से बढ़ जाती है। मलेरिया की ही तरह कालाजार की मक्खियाँ और उससे होने वाली कालाजार की बीमारी भी अत्यन्त घातक है। अब तो हमारे देश में हाथीपाँव (फाइलेरिया) फैलाने वाले मच्छर भी बेतहाशा बढ़ गये हैं। एक सर्वेक्षण से पता चलता है, कि हमारे देश में "एनोफिलीन" फैलाने वाले मच्छरों की संख्या बढ़कर मलेरिया के मच्छरों से भी अधिक हो गयी है।

बड़े बांधों तथा उनसे की जाने वाली सिंचाई की कीमत, मानव मात्र को बहुत ही महंगी पड़ रही है। फ्लूरोसिस लंगड़ापन मुख्यतः बाँधों की ही देन है, जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है, कि दस–पन्द्रह वर्षों तक सिंचाई के उत्साहजनक परिणाम मिलने के उपरान्त, उसके बाद फिर भूमि धीरे–धीरे क्षीण हो जाती है तथा उसमें धातु तत्व अप्रत्याशित रूप से बढ़ जाते हैं। ऐसी भूमि में उत्पन्न अनाजों में धातु तत्वों की मात्रा भी अत्यधिक बढ़ जाती है। भोजन के माध्यम से इन्सान के पेट में मालिब्डिनम पहुंचने लगता है, इसी तरह उक्त भूमि में उत्पन्न अनाज व उससे बने भोजन के माध्यम से शरीर में फ्लोराइड जमा होने लगता है। फ्लोराइड स्वास्थ के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है। शरीर के साथ क्रियाशील होकर यह फ्लोरोसिस का कारण बनता है। मानव–अस्थियों पर फ्लोरोसिस का प्रभाव एक प्रकार से जीते जी मौत के समान है, यह अपना प्रभाव शरीर की हर हड्डी पर दिखाता है। दांत भदरंग हो जाते हैं। फ्लोरोसिस का सबसे खतरनाक प्रभाव मानव की रीढ़ की हड्डी पर पड़ता है। फ्लोरोसिस (लंगड़ापन) मानव को पंगु बना देता है। इस असर के प्रारम्भिक चरण में टांगें टेढ़ी होने लगती हैं और फिर धीरे घुटने

आपस में टकराने लगते हैं। अनेक व्यक्तियों की टांगें बेतरह फैल जाती हैं और घुटने पूरी तरह आपस में जुड़ जाते हैं। अनेक लोगों की टाँगें दो भाग में मुड़कर अंग्रेजी के (s) की तरह का आकार की हो जाती हैं। इस तरह की घातकता के शिकार लोग फिर चलने फिरने में पूरी तरह असमर्थ हो जाते हैं।

फ्लोरोसिस (लंगड़ेपन) के विकृत रूप को 'जेनुवलगम' नाम दिया गया है। जेनुवलगम बीमारी अधिसंख्य 25 वर्ष से कम उम्र के लोगों को अपना शिकार अधिक बनाती है। वैसे उम्र के हिसाब से जेनुवलगम का रूप भी भिन्न–भिन्न प्रकार का पाया जाता है।

फ्लोरोसिस के सन्दर्भ में हमारे देश में आन्ध्र प्रदेश के नागार्जुन बाँध के आसपास के क्षेत्रों पर एक अध्ययन किया गया, जिसमें पाया गया कि बाँध बनने से पूर्व उक्त क्षेत्र में फ्लोरोसिस बीमारी तक का नाम लोग नहीं जानते थे। बाँध के जलाशय, नहरों द्वारा सिंचाई, सिंचाई नहरों के रिसने के कारण, उस क्षेत्र का भूमिगत जल का स्तर काफी उठ गया था। जिससे मिट्टी में खारापन, फ्लोराइड, चूना, ताँबा, मालिब्डियम, मैंगनीज, जस्ता आदि धातु तत्व बढ़ गये थे। क्षेत्र में ज्वार की फसल पर्याप्त मात्रा में उगाई जाती है, क्षेत्र के जिन लोगों का मुख्य आहार ज्वार था, उनके शरीर में भोजन के माध्यम से पर्याप्त मात्रा में मालिब्डिनम पहुंच गया जिस कारण उनके शरीर से तांबे का तत्व अधिक निकल गया था और वे उसकी कमी के शिकार हो गये थे। अधिक मात्रा में फ्लोराइड शरीर में पहुंचने के कारण ही उस क्षेत्र में फ्लोरोसिस अप्रत्याशित रूप से उभरकर सामने आया।

उक्त संदर्भ में हैदराबाद के नेशनल इंस्टिट्यूड आफ न्यूट्रिशन के वैज्ञानिकों ने अपनी सर्वे में जो कुछ पाया, वह चौंकाने वाला था। वैज्ञानिकों ने पाया कि उस क्षेत्र में कहीं–कहीं तो पूरे के पूरे ही गांव इस बीमारी के शिकार पाये गये। वैज्ञानिकों ने यह भी पाया कि ज्वार में मालिब्डियम की संचय क्षमता अन्य फसलों की अपेक्षा सर्वाधिक थी। चावल महंगा होने से गरीब लोग ज्वार को भोजन के रूप में बहुतायत प्रयोग करते थे, इसी कारण उनमें फ्लोरोसिस तथा उसके विकृत स्वरूप से उत्पन्न और भी खतरनाक बीमारी जेनुवलगम की बीमारी सर्वाधिक पायी गयी। वैज्ञानिकों ने पाया, कि

उक्त बीमारियां धीरे–धीरे सिंचाई वाले बाहरी क्षेत्रों को भी फैलने लगी हैं। नई सिंचाई योजनाएं बनने के कारण यह घातक रोग कर्नाटक तथा तमिलनाडु में भी पहुंचा, कर्नाटक के होसपेट बाँध के आसपास के गांवों में तथा कोयम्बतूर जिले के परंबीकुलम–अलियार बांध के 30 किमी० के व्यास क्षेत्र में भी घातक जेनुवलगम पहुंच गया।

जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है, बाँधों से पानी के जमाव, नहरों द्वारा सिंचाई तथा रिसाव के कारण मलेरिया आदि के मच्छर बेतहाशा बढ़ जाते हैं। तमिलनाडु के सातनूर जलाशय की एक विगत रिपोर्ट बताती है कि अस्सी के दशक में समूचे तमिलनाडु में मलेरिया फैलाने में इसी जलाशय का प्रमुख हाथ था। पोन्नियार नदी सेलम, धर्मपुरी तथा उत्तरी अर्काट जिलों से होकर गुजरती है। इसके किनारे के समस्त गांव मच्छरों के गढ़ बने थे, उक्त जलाशय के आसपास मलेरिया रोगियों का प्रतिशत पचास प्रतिशत से अधिक था। नदी के प्रवाह को नियन्त्रित करने तथा पुरानी नालियों में अधिक पानी छोड़ने के उद्देश्य से बनाया गया, उक्त बाँध क्षेत्र के लिए अभिशाप बना था। मलेरिया फैलाने वाले मच्छरों के साथ–साथ फाइलेरिया (हाथी पांव) फैलाने वाले मच्छरों के लिए भी उक्त प्रक्रिया सहायक सिद्ध हुई। बाँधों से इस प्रजाति के मच्छरों को फलने–फूलने का पर्याप्त अवसर मिला। भारत के अनेकों क्षेत्र तो आज इन मच्छरों के गढ़ ही बन चुके हैं।

मस्तिष्क–ज्वर (फाइलेरिया व एन०सी० फिलाइट्स) सिंचाई व्यवस्था–कुव्यवस्था के कारण, सर्वप्रथम जापान में पाया गया, जो बाद में धीरे–धीरे एशियाई देशों की ओर अपने पांव पसारता चला आया, यह एक मौसमी रोग है, जो कुछ विशेष किस्म के मच्छरों से फैलता है। यह मलेरिया से और भी हानिकारक एवं जानलेवा रोग है। इसके रोगियों की मृत्युदर सर्वाधिक है।

हमारे देश भारतवर्ष में यह रोग सर्वप्रथम, आजादी के सात–आठ वर्षों बाद सर्वप्रथम कहीं–कहीं पर दिखाई दिया था, जो धीरे–धीरे पश्चिमी बंगाल, बिहार, आसाम, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, पांडुचेरी, आदि राज्यों में फैलता चला गया। मात्र 1980 में ही इस बीमारी से 1434 लोग अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए।

आम तौर पर यह देखा गया है कि इस रोग के मच्छर, धान के खेती के दौरान सिचाई ज्यादा होने से फलते फूलते हैं। सामान्यतया बताया जाता है, कि इस रोग के विषाणुओं को कुलिसाइन और एनोफिलीन मच्छर फैलाते हैं। भारत में इस रोग को फैलाने के सर्वाधिक जिम्मेदार 'क्यूलेक्स ट्राइटीनियोरिशस' मच्छर हैं। मस्तिष्क ज्वर के मच्छर इस व्याधि को सुअरों, बगुले, बत्तख औरबलाका जैसे पक्षियों में फैलाते हैं, मानव–मात्र तो अचानक ही इसके बैक्टिरियाजों के जाल में फंस जाता है। यह भी पाया गया है कि आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से कमजोर तबके के लोगों, विशेषकर जो लोग सुअरों–बगुलों को पालते हैं और उनके साथ रहते हैं उनमें इस रोग की सम्भावनाएं कई गुना बढ़ जाती है।

मस्तिष्क ज्वर में केन्द्रीय नाड़ी संस्थान असन्तुलित होकर बिगड़ जाता है तथा बुखार और बेहोशी के साथ, शरीर में ऐंठन बेतरह बढ़ जाती है। जिसका तत्काल इलाज न किये जाने की स्थिति में मनुष्य की मृत्यु की सम्भावनाएं काफी बढ़ जाती हैं।

इस अध्ययन से स्पष्ट है कि पन बिजली प्राप्त करने हेतु बाँधों का निर्माण, मानव कल्याण के स्थान पर मानव विनाश के प्रति अधिक जिम्मेदार है। इस विनाश के यमदूत से छुटकारा पाने हेतु इसके स्थान पर लघु–पनबिजलियों का निर्माण किया जाना तथा साथ ही नहरों के रिसाव को भी नियन्त्रित किया जाना आवश्यक है, पानी के जमाव के प्रति सावधान रहना होगा, सिंचाई व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन किये जाने आवश्यक हैं, कीटनाशक दवाओं के छिड़काव के साथ–साथ खेतों में पानी बहा देना भी लाभदायक है, इससे पानी में पड़े मच्छरों के लार्वाओं को नष्ट करने में कामयाबी मिलती है। रूके पानी के जमाव की उचित निकासी के साथ-साथ, स्वास्थ एवं पर्यावरण के प्रति लोगों में जागृति लाना भी आवश्यक है।
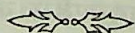
6

परमाणु ऊर्जा के दुष्प्रभाव

ऊर्जा प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण विश्व परमाणु ऊर्जा की ओर अग्रसर है। अनेकों देशों ने जहां इसमें महारत हासिल कर ली है, वहीं दूसरी ओर इससे वंचित देश इस ऊर्जा को अपनाने हेतु सतत प्रयत्नशील हैं अथवा अपना रहे हैं। परमाणु ऊर्जा को कामधेनु के रूप में प्रचारित किया जाता रहा है।

परमाणु ऊर्जा के सन्दर्भ में यह कल्पना कितनी खूबसूरत लगती है कि मात्र एक छोटी सी डिबिया भर परमाणु ईंधन से जहाज पूरी दुनिया का चक्कर लगा लेगा अथवा मात्र इतने ईंधन से बड़े—बड़े कल कारखाने चलेंगे आदि—आदि। परन्तु अक्सर इस बात को यहां पर नजरअन्दाज कर दिया जाता है कि कामधेनु के रूप में घोषित यह परमाणु ऊर्जा सम्पूर्ण विश्व एवं प्राणिमात्र के लिए वरदान नहीं बल्कि एक खतरनाक अभिशाप है।

भारत वर्ष में परमाणु ऊर्जा के पितामह होमी भाभा माने जाते हैं जिन्होंने आजादी से दो वर्ष पूर्व ही इसकी सम्भावना का संकेत देते हुए इसके प्रवेश के द्वार खोल दिये थे। भारतवर्ष में आज करोड़ों नहीं बल्कि अरबों—खरबों का परमाणु—ऊर्जा कार्यक्रम चल रहा है।

परमाणु ऊर्जा मानवमात्र ही नहीं सम्पूर्ण पर्यावरण, जीव, जन्तु, वनस्पतियों, भूमि, जल, वायुमण्डल के लिए लाइलाज, घातक व खतरनाक है, जिसे निश्चित तौर पर समूचे विश्व के लिए अकाल मृत्युदाता घोषित किया जा सकता है। यह एक ऐसा भयानक डरावना अभिशाप है, जिससे लाखों वर्षों तक भी निजात नहीं पायी जा सकती।

दुनियाँ के अधिसंख्य राष्ट्र (समस्त कहें तो भी बुरा नहीं है) जिस तरह परमाणु ऊर्जा की कीमत पर समूचे विश्व को दांव पर लगाने में तुले हैं, उसे बुद्धिमता तो कत्तई नहीं कहा जा सकता है। हम सम्पूर्ण विश्व को एक अमिट प्रदूषण की चपेट में ही नहीं झोंक रहे हैं, बल्कि लाखों वर्ष बाद (यदि हम संसार को वहां तक चलने दें तो) दुनियां में जो आने वाली पीढ़ी होगी उसे भी हम आज ही से एक ऐसा भयानक अभिशाप उपहारस्वरूप देने जा रहे हैं, जिसका कोई निदान ही नहीं है। कहने का आशय यह है, कि हम परमाणु ऊर्जा के माध्यम से वर्तमान संसार को ही बर्बाद नहीं कर रहे हैं बल्कि विश्व की परिकल्पना को ही मिटाने की तैयारी में जुट चुके हैं।

यूरेनियम की खुदाई, भारी पानी, ऊर्जा प्राप्त करने की प्रक्रिया, काम आ चुके ईंधन को फिर से उपचारित करने के क्रम तथा कचरे के निपटान तक की परमाणु ऊर्जा की पूरी कार्यप्रणाली अत्यन्त घातक है। परमाणु ऊर्जा के बदले सम्पूर्ण विश्व को जो भारी कीमत चुकानी पड़ेगी, उसकी परिकल्पना से ही आत्मा थरथरा उठती है। हम अपने सम्पूर्ण विनाश को ही न्योता नहीं देने जा रहे हैं, बल्कि सम्पूर्ण प्राकृतिक ढांचे को ही तहस नहस करने में जुटे हैं।

परमाणु ऊर्जा प्राप्त करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया और उसके बाद बचने वाला रेडियमधर्मी कचरा ही इस समस्त बुराई की जड़ है। ये विद्युत कणीय विकिरण एक खतरनाक जहर हैं, जिससे गामा रेडिएशन (विकिरण) निकलते हैं। जिसका खतरा प्रारम्भ से अन्त तक बना रहता है।

परमाणु–ऊर्जा संयन्त्र चलाने हेतु यूरेनियम की आवश्यकता होती है। खदान से प्राप्त यूरेनियम में यूरेनियम–आक्साइड पाया जाता है। मात्र 1000 मेगावाट बिजली पैदा करने हेतु 3-4 लाख टन कच्ची धातु की आवश्यकता होती है।

यूरेनियम के खनन से निकलने वाला 'रेडोन' फेफड़ों में पहुंचकर रेडियोधर्मिता फैलाता है। अक्सर रेडोन, रेडियम तथा अन्य दूसरे जहरीले तत्वों का आक्रमण खदान के कार्य प्रारम्भ करने के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है, यही कारण है खुदान से जुड़े मजदूर

तथा आसपास के क्षेत्रों में रेडियोधर्मिता के प्रभाव देखने को मिल जाते हैं, यूरेनियम के खुदान में कच्ची धातुओं का उपचार कर उससे यूरेनियम को अलग करने हेतु तेजाबों व रसायनिक द्रव्यों का सहारा लिया जाता है, तथा इस प्रक्रिया से गुजरने के उपरान्त इस कचरे को निथारने का कार्य किया जाता है, इस निथारे गये अवशेष में भी यूरेनियम सल्फेट, रेडियम तथा मैंगनीस के खतरनाक कण पाये जाते हैं, जो अपने आस–पास की वनस्पतियों, प्राणीमात्र, भूमि, जल तथा वातावरण को विषाक्त बनाते हैं।

परमाणु बिजलीघर भारी अथवा हल्के पानी पर आधारित होते हैं, भारी पानी भी लीगेज, वाष्पन तथा अन्य कारणों से आंशिक मात्रा में बरबाद होकर वातावरण में फैलता है। आयोनाइजिंग विकिरण तथा ट्रिटियम भी बहुत खतरनाक होते हैं। ट्रिटियम, हाइड्रोजन का भारी आइसोटोप है, जिसका आणविक वजन –3 होता है। यह एक अत्यन्त विषैला तत्व है, जो भारी पानी रिएक्टर का सह उत्पाद है। यह तत्व बड़ी सरलता से शरीर में जज्ब हो जाता है।

प्लूटोनियम संयन्त्रों में अत्यधिक खतरनाक गामा किरणों के अलावा दुनियां का सबसे अधिक जहरीला तत्व प्लूटोनियम भी उपस्थित रहता है। परमाणु ईंधन चक्र में प्लूटोनियम प्राप्त करने के उपरान्त काम आ चुके परमाणु ईंधन के पुनरुपचार की प्रक्रिया सर्वाधिक खतरनाक, पर्यावरण एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अत्यधिक घातक है, दरअसल पुनरुपचार की प्रक्रिया ही इतनी ढीली और औपचारिकतापूर्ण होती है कि अधिसंख्य देश इस सन्दर्भ में पूरी तरह लापरवाह हैं, जो कार्य होता है वह बहुत कम है, जबकि होना यह चाहिए था कि काम आ चुके परमाणु ईंधन का पुनरुपचार तुरन्त तथा तत्काल करा लेना चाहिए अथवा बेहतर तो यही होता कि इसके पुनरुपचार की प्रक्रिया को ही समाप्त कर देनी चाहिए, क्योंकि इसी पुनरुपचार की प्रक्रिया के बाद अणुबम तथा अणुशस्त्रों का निर्माण किया जाता है। जिससे इसके विध्वसांत्मक उपयोग की सम्भावना भी बढ़ जाती है। पुनरुपचार किया प्लूटोनियम यदि गलत हाथों में चला जाय तो इससे विनाश का खेल खेला जा सकता है।

परमाणु बिजलीघरों से निकला अतिभयावह रेडियमधर्मी कचरा आज से लाखों वर्ष बाद भी इसी रूप में रह सकता है, यानि जब

तक धरती रहेगी तब तक यह खतरनाक कचरा अपने विध्वसंक रूप में विद्यमान रहेगा। अतः जब तक यह ब्रह्माण्ड रहेगा और पृथ्वी पर मानव रहेगा तब तक उसे इस कचरे को बिल्कुल सुरक्षित रखना होगा।

एक अनुमान के आधार पर 1990 तक पृथ्वी पर यह विषाक्त कचरा चालीस हजार से एक करोड़ टन के बीच था, जिसका अधिसंख्य भाग बिजलीघरों में काम आ चुके हौजों में पड़ा बताया गया।

इस कचरे को एक विशेष किस्म के कांच अथवा किसी अन्य ठोस पदार्थ में परिवर्तित करने में दुनियां के वैज्ञानिक सफल भी हो चुके हैं तथा इस सन्दर्भ में नवीन–नवीन खोजों में जुटे हैं। इसे समुद्रतल में दफनाने, विशेष कूड़ाघरों में कैद करने की प्रक्रियाएं चल रही हैं, परन्तु फिर भी यह तो स्पष्ट है, कि यह एकदम अस्थाई एवं खतरनाक उपचार है, क्योंकि यह तो हमेशा–हमेशा के लिए निमन्त्रण दे देकर बुलायी गयी मुसीबत है, जिसका कोई स्थाई हल ही नहीं है।

यह अमरत्व पाया कचरा जहां भी रहे, अपने विषैले फनों के चारों ओर कुण्डली मारकर हमेशा फुफकारता रहेगा तथा प्राकृतिक उथल–पुथल, भूकम्प अथवा अन्य कारणों से जब कभी खुल जायेगा तो फिर तत्काल अपना असली रूप दिखा देगा।

कचरे के निपटान की प्रक्रिया को हम अमरत्व पाये ऐसे भयानक विषधर से तुलना कर सकते हैं जिसे हम पिटारे में बन्द कर रहे हैं। पिटारा जब भी खुलेगा, भयानक विषधर बाहर निकल आयेगा। दुनियां के लोग इन पिटारों की रक्षा कर पायेंगे, इस पर पूरा संशय है।

दुनियां के अधिसंख्य देश इस रेडियोधर्मी कचरे को प्लास्टिक के डिब्बों में लपेटकर लोहे के ड्रमों में सील करके धरती के अन्दर दफना रहे हैं। इस प्रक्रिया में वे भूल गये हैं, कि जब कुछ वर्षों बाद जमीन में गड़ा यह ड्रम जंग खाकर कट–फट जायेगा, तब उस कचरे की रेडियोधर्मिता भूमिगत जल तथा भूमि में फैलेगी। जो आहार चक्र के साथ जीव शरीर में घुसकर अपना असली रूप दिखा देगी।

दुर्भाग्य से यदि भूमिगत जल व्यवस्था में इस कचरे की रेडियमधर्मिता पहुंच गयी तो वह प्राणिमात्र व वनस्पतियों के लिए जानलेवा होगी, क्योंकि इससे भूमिगत जल में नाइट्रेट की मात्रा अप्रत्याशित रूप से बढ़ जायेगी। पानी में नाइट्रेट की मात्रा बढ़ने से रक्त प्रणाली दूषित होकर उसमें अनेकों विकार और खराबियां पैदा हो जाती हैं। जिससे कैन्सर तो होता ही है परन्तु यह गर्भस्थ शिशुओं को ही नहीं बक्सता। क्योंकि इससे गर्भपात बढ़ जाता है, जो बच्चे पैदा होते हैं, वे रेडियमधर्मिता के कारण विकृत होते हैं।

परमाणु ईंधन संस्थान अपने अवशेषों से ठोस नाइट्रेट निकालकर उसे बेच भी देता है, ठोस नाइट्रेट को उपयोग में लाने पर असावधानी करने अथवा इस उपयोग के बाद के कचरे का सही निपटान न किया गया तो वह भी खतरनाक हो जाता है, जिरकोनियम धूल से सना छीजन तुरन्त आग पकड़ता है। खासकर जब रगड़ होती है, इसमें मैग्नीशियम क्लोराइड मिल जाता है। इस कचरे को भी निर्जन क्षेत्रों में सुरक्षित गाड़ना आवश्यक है।

परमाणु बिजलीघर मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं। एक में भारी पानी की आवश्यकता होती है, दूसरे को हल्के पानी से चलाया जाता है तथा तीसरा ग्रेफाइड तकनीकि से विद्युत् पैदा करता है, यह तो सभी जानते हैं कि परिष्कृत यूरेनियम से अणुशस्त्रों का निर्माण किया जाता है।

परमाणु बिजली–घरों के लिए उपयोगी भारी पानी की कुछ मात्रा अक्सर वाष्पन, लीगेज व अन्य कारणों से बर्बाद हो जाती है। फास्ट ब्रीडर रियेक्टर भारी अथवा हल्के पानी से चलने वाले ताप रियक्टरों का विकल्प बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है। फ्रास्ट ब्रीडर वास्तव में एक भयानक नियन्त्रित बम ही है, जिसके पदार्थ में हजारों "क्रिटिकल मास" अथवा स्वतंत्र क्षमता वाले बमों का ढेर है। अतः यह कहा जा सकता है कि फास्ट ब्रीडर रियेक्टर में ताप परमाणु रियेक्टर की समस्त विपदाएं, अनहोनी, विनाश तथा जटिल समस्याएं विद्यमान रहती हैं। इसमें विशेष सुरक्षा व्यवस्था पर हमेशा ध्यान केन्द्रित किये रखना होता है, ताकि वह महाविनाश का कारण न बन जाये।

परमाणु बिजलीघरों का कार्य ही इतना खतरनाक है, कि विशेषतः उसमें काम करने वालों पर कभी भी खतरनाक मात्रा में विकिरण का प्रभाव पड़ सकता है, हालांकि रेडियोधर्मिता की सुरक्षा का मानक पांच रेम सालाना तय किया गया है, परन्तु इस बात की कोई गारन्टी नहीं है कि ताप बिजलीघरों में इस मानक का सही–सही पालन किया जाता है।

वास्तव में गम्भीरता से सोचा जाय,तो स्पष्ट है,कि विद्युत् कणीय विकिरण दुनियां का सबसे खतरनाक जहर है। विकिरण के प्रभावों को दृष्टिगत रखा जाय, तो इसके प्रभावों की कोई सुरक्षित सीमा हो ही नहीं सकती। अतः इसे मात्रा अथवा निर्धारित रेम की मात्रा के बन्धन में बांधना मात्र लोगों को मूर्ख बनाना तथा बरगलाना भर है क्योंकि अनेक अध्ययनों से यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो चुकी है कि अल्पमात्रा में भी विकिरण का प्रभाव कैन्सर उत्पन्न कर सकता है।

परमाणु रियेक्टर को क्षमता से अधिक समय तक कार्यरत रखने अथवा कई अन्य कारणों से वह खराब हो सकता है। इससे ईंधन चूकने लगता है। इस घटना से जब कभी गरम रियेक्टर के ईंधन के गट्ठर में चूक होनी प्रारम्भ होती है, तब ऊपरी जिरकालाई परत से रिसाव प्रारम्भ हो जाता है और इससे भारी मात्रा में रेडियम विकिरणयुक्त परमाणु ईंधन का कजरा नालियों में बह सकता है, इससे रियेक्टर के भीतर भी उच्च रेडियमधर्मी क्षेत्र उष्ण क्षेत्र में परिवर्तित हो जाता है। यहां पर खतरा तब और भी बढ़ जाता है जब रेडियमधर्मी पदार्थ ठण्डा रखने वाले सर्किटों में रिसाव की क्रिया द्वारा पहुँचता है तब ट्यूब, वाल्व, भाप के जनरेटरों, कन्डेसरों, टर्बाइनों आदि में भयानक प्रदूषण फैल जाता है। यह स्थिति काफी डरावनी व खतरनाक होती है।

इसके सिवाय भाप के जनरेटर ट्यूब का रिसाव, री–सर्क्यूलेशन पम्प का बन्द होना, कन्ट्रोल वाल्व में रिसाव, कन्ट्रोल रॉड ड्राइव की गड़बड़ी, पाइपिंग व्यवस्था में दरारें आ जाना, कन्डेसर ट्यूब, प्राथमिक एवं द्वितीयक पाइप की लाइनों, भीतरी हिस्से आदि में रिसाव, कन्डेसर का वैल्यूम घट जाना, फीडवाटर पम्प की खराबी तथा अन्य तकनीकी खराबियां, डिजायन की कमी, घटिया एवं

सेकन्डहैंड रियेक्टर व सामग्रियां आदि भी खतरनाक ढंग से रेडियमधर्मिता फैलाने के लिए जिम्मेदार मानी गयी हैं।

परमाणु रियेक्टर के प्राइमरी कूलंट ट्यूब (प्राथमिक शीत ट्यूब) में कुछेक बिजलीघरों में जटिल समस्याएं उत्पन्न होती देखी गयी हैं। प्राइमरी कूलंट ट्यूब में खराबी के कारण उसके केन्द्र में से गरम रेडियमधर्मी पानी बहने लगता है। इस स्थिति में एक छोटा सा छेद भी बहुत सारा रेडियमधर्मी जल फेंकने में सक्षम होता है जो आसपास के वातावरण को सेकण्डों में भयानक रूप से प्रदूषित कर सकता है। धीरे–धीरे भी अल्प मात्रा में लगातार हो रहे रिसाव के कारण रियेक्टर के केन्द्र में जलस्तर घट जाता है, जिससे उसमें और केन्द्र में बेकाबू होता तापमान कई हजार डिग्री तक पहुंच सकता है, इस क्रम में फिशन इनर्जी पंपिग का तापमान केन्द्र के तापमान से काफी अधिक बढ़ जाता है। ऐसे में केन्द्रीय हिस्सा पिघल सकता है तथा ढेर सारा गरम रेडियमधर्मी जल बहकर अनियन्त्रित होने लगता है। इसमें रिसन भी एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या है।

परमाणु विद्युत् प्राप्त करने की प्रक्रिया में थोड़ी भी सी असावधानी, निर्माणकर्त्ता व संचालनकर्त्ता की एक छोटी सी भूल, देखभाल सामान्य जांच में खामियां, असावधानी भरे निर्णय, निश्चित अवधि में विलम्ब, समय सारिणी में भूल आदि असावधानियां भयंकर दुर्घटनाओं में बदल सकती हैं।

रेडियमधर्मी विकिरण स्वास्थ के लिए अत्यधिक खतरनाक और ऐसी जानलेवा आफत है, जिसका न कोई रंग–रूप है और न स्वाद अथवा आवाज। लेकिन इसकी क्षमता इतनी अधिक है कि यह सम्पूर्ण विश्व के जीव मात्र का अन्त करने में सक्षम है।

परमाणु ऊर्जा का मानव स्वास्थ पर अध्ययन करने पर चेर्नोबिल की दुर्घटना की चर्चा करना अति आवश्यक है। 25 अप्रैल 1986 में सोवियत संघ के चेर्नोबिल परमाणु बिजलीघर में अग्निकाण्ड एवं विस्फोट हुआ था, जिससे भारी मात्रा में रेडियमधर्मी विकिरण का रिसन हुआ।

चेर्नोविल आज स्वतंत्र राष्ट्र उक्रेन में स्थित है। तब अचानक परमाणु रियेक्टर में भयानक विस्फोट हुआ था। प्रत्यक्षदर्शी बताते

हैं कि तब ऐसा लगा था मानो आधे टन का टी०एन०टी० बम फटा हो, परमाणु रियेक्टर में विस्फोट के साथ अणु रियक्टर लगभग 2800 फारेनहाइट की तीव्र गरमी के साथ अनियन्त्रित होकर धूधू कर जलने लगा। जिससे परमाणु केन्द्र की पूरी छत धमाके के साथ उड़ गयी तथा निकटवर्ती लगभग तीस जगहों में भयानक ढंग से आग लग गयी, विकिरण फैलाने वाले पदार्थ भी चारों ओर बिखरकर इस तरह जलने लगे, मानो परमाणु आतिशबाजी अथवा दीवाली का पर्व मनाया जा रहा हो, परमाणु ईंधन के टुकड़े केन्द्र से एक एक किलोमीटर की दूरी तक जाकर गिर रहे थे।

वैज्ञानिकों का मानना है, कि उक्त दुर्घटना में रियेक्टर के भीतर जितना विकिरण था, उसका दस प्रतिशत विकिरण हवा में फैला। यह हवा के साथ यूरोप तथा दूर–दूर तक परमाणु धूल के रूप में छा गया।

चेर्नोबिल के निकट बसे प्रिप्यात नगर की पैंतालीस हजार की पूरी बस्ती को मात्र, तीन घंटे में खाली करना पड़ा, पीछे छूटा सारा सामान विकिरण से प्रभावित होकर बेकार हो गया था। परमाणु केन्द्र के आसपास 300 वर्गमील का क्षेत्र भी खाली करवाया गया, इस क्षेत्र से 90,000 से अधिक लोगों को हटाया गया, इस तरह कुल एक लाख पैंतीस हजार लोगों को हटाकर, रूस के विभिन्न नगरों में बसाया गया था।

उक्त दुर्घटना से पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, मवेशी, भूमि, जल तथा जलवायु सभी विकिरण से प्रभावित हो गये थे। दुर्घटना के वर्षों बाद तक बुलडोजरों की सहायता से हजारों हेक्टेयर भूमि की ऊपरी परत को खोद खोदकर हटाया गया, यह मिट्टी पूरी तरह विकिरण से प्रभावित थी, अतः लाखों बरसों तक यह मिट्टी जिस रूप में भी दूसरे पदार्थों जैसे जल, वनस्पति, खेती आदि के सानिध्य में आयेगी, अपनी रेडियम धर्मिता अवश्य फैलायेगी। इस कचरे का जहर हमेशा आतंकित करता रहेगा।

चेर्नोबिल परमाणु रियेक्टर में आग लगाने के बारह दिनों तक अथक प्रयास के बावजूद भी आग पर काबू नहीं पाया जा सका। बाद में उसके ऊपर पांच हजार टन सीमेन्ट–रेत आदि फेंककर उसे

ढक दिया गया। इसके बाद भी कई दिनों तक उसके अगल–बगल आग धधकती रही। यद्यपि बाद में उक्त रियेक्टर को ढकने में सफलता मिल गयी थी और उसके ऊपर सीमेन्ट का आवरण चढ़ा दिया गया था, परन्तु यह तो निर्विवाद सत्य है कि दुनियां ने एक जहरीले नाग को पिटारी में ढक दिया, पर इस बात की क्या गारन्टी है, कि पिटारी क्षत विक्षत नहीं होगी अथवा वह सड़–गल न जायेगी। जिस दिन ऐसा होगा, उस दिन फिर वह जहरीला नाग फन उठा–उठाकर बाहर निकल जायेगा और अपने विषदन्तों को जहां–तहां गढ़ाना प्रारम्भ कर देगा।

चेर्नोबिल दुर्घटना में तत्काल 32 लोग मारे गये थे और अनुमानतः रेडियम धर्मिता से बीस लाख लोग प्रभावित हुए थे, दुर्घटना के बाद विकिरण का यह जहर दुनियां के अनेक देशों तक फैलते चला गया। सम्पूर्ण यूरोप के वातावरण में विकिरण का अणु रज फैला और यह जहर विभिन्न रूपों में तथा खाद्य पदार्थों में फैलकर लाखों लोगों में रेडियम धर्मिता फैला चुका है।

दुर्घटना के मात्र दो माह बाद जो तरल दूध व पाउडर हालैण्ड से फिलीपीन्स पहुंचा था, उसमें पर्याप्त मात्रा में रेडियमधर्मी विकिरण की मात्रा पायी गयी थी, परीक्षणों से स्पष्ट हुआ था, कि इसमें सीजियम घातक मात्रा में उपस्थित था। हालैण्ड के साथ–साथ ब्रिटेन तथा आयरलैण्ड तक के दूध में रेडियमधर्मिता की घातक मात्रा पायी गयी थी, सिंगापुर ने यूरोप के खाद्य पदार्थों में रेडियम धर्मिता की जांच कर 240 पदार्थों के अनुबन्ध समाप्त कर दिये थे, इसी दरम्यान मलेशिया सरकार ने इटली से आयातित तरकारियों, हालैण्ड से आया लगभग 50,000 किलो मक्खन भी वापस भेज दिया था।

श्रीलंका की ही सरकार ने पोलैण्ड तथा बुल्गारिया से आये मुरब्बे पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। तब बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने खाद्य पदार्थों में उपलब्ध इस रेडियमधर्मिता युक्त पदार्थों को, गरीब देशों तथा ढीली–ढाली सरकारों वाले देशों में, बांटकर पैसा ही नहीं कमाया बल्कि रेडियमधर्मिता का जहर पूरी दुनियां बांटकर, जन स्वास्थ को भारी आघात पहुँचाया।

एक अध्ययन के अनुसार 1986 में चेर्नोबिल की परमाणु

विकिरण की दुर्घटना के बाद मात्र उक्रेन में ही 1988 से 1994 के मध्य लगभग पाँच साल में लगभग एक लाख पच्चीस हजार लोगों की परमाणु विकिरण से मृत्यु हुई तथा इससे भी अधिक लोग विकिरण से बुरी तरह प्रभावित पाये गये। रेडियोधर्मी विकिरण का यह घातक मृत्यु का ताण्डव अभी कई वर्षों तक चलता रहेगा।

उक्त दुर्घटना का यह तो एक छोटा सा आंकड़ा है, यदि सही रूप से जांच की जाय, तो निश्चित है, कि चेर्नोबिल की दुर्घटना ने लाखों नहीं बल्कि करोड़ों लोगों को अपनी रेडियमधर्मिता से प्रभावित किया होगा।

अतः उक्त आधार पर स्पष्ट है, कि परमाणु विजली घर बेहद खर्चीले होने के साथ साक्षात् मौत के समान हैं, जो मानव स्वास्थ ही नहीं, वनस्पतियाँ—प्राणिमात्र तथा सम्पूर्ण पर्यावरण के लिए बेहद हानिकारक है।

वर्तमान पीढ़ी को कुछेक वर्ष प्रकाश देने के एवज में सम्पूर्ण पृथ्वी—जल—वायु को लाखों वर्षों तक के लिए गहन अन्धकार में धकेल देना बुद्धिमता तो नहीं कही जा सकती है। बेहतर होता कि दुनियां परमाणु बिजली से सम्पन्नता अथवा प्रकाश पाने के बजाय अन्धकार में जीना सीखती।
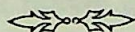
7
सूर्य किरणों के दुष्प्रभाव

प्रातःकालीन सूर्य की रक्तिम लाल किरणें, जहां शरीर और त्वचा को विटामिन "डी" देती हैं वहीं दूसरी ओर अन्य समय की रवि रश्मियाँ त्वचा के लिए नुकसानदेय एवं घातक होती हैं। इसकी रश्मियों की नुकसानदेयता, हर ऋतु एवं हर मौसम में एक समान होती है। इस कारण गर्मियों में ही नहीं बल्कि जाड़ों में भी सूर्य की किरणें त्वचा को प्रभावित करती हैं। सूर्य की किरणें त्वचा की मुलायमता, लोच एवं कोमलता को घटाकर उसे बीमार बना देती हैं, जिससे त्वचा में रूखापन, खुश्कता व कालापन आकर त्वचा झुर्रियोंयुक्त हो जाती है। अधिक समय तक धूप में रहने वाले व्यक्ति को त्वचा कैन्सर तक हो सकता है।

मानव त्वचा पर दिनकर रश्मियों के तत्कालिक प्रभाव में धूप ताम्रता (सनवर्न) प्रमुख है। सनवर्न की प्रथम स्थिति में त्वचा अपना रंग परिवर्तित कर देती है, सांवले अथवा काले लोगों की अपेक्षा गोरे रंग की त्वचा में सनवर्न की सम्भावना कई गुना अधिक रहती है। द्वितीय स्थिति त्वचा में पड़े हुए प्रकाश की मात्रा से सम्बद्ध होती है। सौर किरणों से प्रभावित होने वाली त्वचा में किरणों के पड़ने के कम से कम एक घंटे तथा अधिकतम चौबीस घंटे के अन्तराल में सनवर्न के लक्षण स्पष्ट परिलक्षित होने लगते हैं।

सूर्य किरणों के त्वचा पर पर्याप्त मात्रा में पड़ने के कारण, सनवर्न की स्थिति में त्वचा पर लाली छा जाती है तथा फफोले पड़ते हैं। सनवर्न विशेष रूप से गर्मियों में अधिक प्रभावी होता है। सनवर्न की स्थिति में मानव शरीर की बाह्य त्वचा जिसे एपीडर्मल सेल्स कहते

हैं, सूर्य की किरणों से अत्यन्त क्षतिग्रस्त हो जाती है तथा कोशिका विभाजन बुरी तरह प्रभावित होकर असन्तुलित हो जाता है, क्योंकि इस स्थिति में त्वचा में विद्यमान रहने वाले जीव-रसायन जैसे प्रोटीन, डी०एन०ए०, आर०एन०ए० इत्यादि के संश्लेषण पर खतरनाक ढंग से प्रभाव पड़ता है।

सौरकिरणों के त्वचा पर दीर्घकालिक दुष्प्रभावों में रक्त नलिकाओं का बढ़ना, फैलना अथवा पीलापन, त्वचा के रंग का गहरा अथवा मध्यम हो जाना, त्वचा में झुर्रियां पड़ना आदि खतरनाक परिवर्तन प्रमुख हैं।

सूर्य किरणों से त्वचा में पड़ने वाले प्रभावों में मिलेनोजेनोसिस का प्रभाव मुख्य है। त्वचा में पाये जाने वाले मिलेनिन रंजक, जिसकी कमी अथवा अधिकता पर ही त्वचा का रंग निर्भर करता है। सूर्य किरणों से इस रंजक का संश्लेषण बढ़ जाता है या फिर इनसे त्वचा में नये रंगों का संश्लेषण प्रेरित होता है।

सूक्ष्मदर्शी द्वारा मानव त्वचा की आन्तरिक संरचना के अध्ययन से स्पष्ट हो चुका है, कि लम्बी अवधि तक त्वचा पर रवि रश्मियों के पड़ने से बाहरी त्वचा पतली पड़ जाती है तथा उसमें असाधारण तरह की नवीन अव्यवस्थित कोशिकाएं दृष्टिगोचर होने लगती हैं। इस तरह के प्रभाव, धूप में कार्य करने वाले लोगों, किसानों, नाविकों, आदि में देखे गये हैं। गोरी त्वचा इससे सर्वाधिक प्रभावित होती भी देखी गयी है। प्रयोगशालाओं में केशरहित चूहों की त्वचा में किये गये प्रयोगों में भी इस तरह के दुष्प्रभाव एवं परिवर्तन देखे गये हैं।

अनुसन्धानों, परीक्षणों से यह स्पष्ट हो चुका है, कि सूर्य की किरणें, कम से कम तीन त्वचा कैन्सरों, वेसलसेल एपीथीलियोमास, मिलेनोमास तथा वेसलसेल कारसिनोमास के लिए सहायक की भूमिका निभाती है। यद्यपि मानव—त्वचा में होने वाले त्वचा कैन्सर प्रयोगिक रूप से स्पष्ट नहीं हो पाये है परन्तु यह निर्विवाद है कि सूर्य की किरणें, इसमें प्रमुख कारक की भूमिका निभाती हैं।

बीसवीं शताब्दी में छपे एक अमेरिकी शोध पत्र ने नौसैनिकों में पाये गये मिलेनोमास कैन्सर का सम्बन्ध सौरकिरणों से सम्बद्ध बताया है।

यह तथ्य भी निर्विवाद है कि धूप की अधिकता वाले क्षेत्रों में गोरे रंग वालों में, त्वचा कैन्सर, कम धूप वाले क्षेत्र के गोरे लोगों तथा काले रंग वाले लोगों की अपेक्षा अधिक होता है। विषुवत रेखा के आसपास रहने वाले लोगों, जैसे स्काटिस, आयरिश आदि देशों के लोगों की त्वचा कैन्सर के प्रति अत्यधिक संवेदनशील पायी गयी है। यहां पर यह भी उल्लेखनीय है, कि काले रंग के लोगों में पाया जाने वाला कैन्सर उनके खुले हिस्सों तक सीमित नहीं रहता है।

शरीर का अत्यधिक संवेदनशील अंग नेत्र के चारों भागों के लिए सूर्य की किरणें अत्यधिक घातक होती हैं। सूर्य रश्मियों से कार्निया प्रभावित होती है, यू०वी०बी० पलकों पर सनवर्न उत्पन्न होता है, कनजंगटाइबा में सूजन आता है तथा वह रक्तिम हो जाता है। मोतियाबिन्द लैन्स पर सौर किरणों के कारण उत्पन्न हुए दुष्प्रभावों के कारण, सूर्य की किरणों में यू०वी०बी० तथा यू०वी०ए० दोनों ही संवेदनशील रसायनों की उपस्थिति, नेत्रों के मोतियाबिन्द का कारण बनती है।

त्वचा कैन्सर, सूर्य किरणों के पड़ने की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यह निर्भर करता है, कि सूर्य की रश्मियों में पराबैगनी किरणों की मात्रा एवं उसकी तीव्रता, सूर्य किरणों के पड़ने का पूर्ण समय, व्यवसाय अथवा कार्य तथा व्यक्ति धूप में कितना कार्य करता है तथा किन रसायनों के सम्पर्क में आता है, साथ ही आनुवांशिक गुण यानि आनुवांशिकता के तहत व्यक्ति विशेष में यू०वी० किरणों से हुई क्षतिग्रस्तता व प्रभावितता की मरम्मत करने की क्षमता पर।

जीव मात्र जहां धूप से अपना बचाव करने में सक्षम है, वहीं दूसरी ओर वनस्पतियां अपनी अचलता से, स्थान परिवर्तन में असमर्थ रहने के कारण सूर्य किरणों के सम्पर्क में सर्वाधिक रहती हैं। यद्यपि पेड़–पौधों तथा वनस्पतियों में पाया जाने वाला वीटा–कैरोटीन आदि के द्वारा उन्हें प्रकृतिजन्य संरक्षण एवं क्षमता प्राप्त है, परन्तु फिर भी मौसम के अनुरूप विभिन्न रसायनों की उपस्थिति तथा सूर्य किरणों की तीव्रता के कारण, वे भी विभिन्न प्रकार के दुष्प्रभावों एवं विकृत्तियों से सुरक्षित नहीं रह पाते हैं।

वनस्पतियों पर पड़ने वाले, सूर्य किरणों के कारण, उनमें पत्तियों का छोटा एवं विकृत्त हो जाना, ऊतकों का क्षतिग्रस्त होना,

क्लोरोफिल की सांध्रता, स्टोमेटा में परिवर्तन आदि दुष्प्रभाव प्रमुख हैं।

सूर्य किरणों के दुष्प्रभाव जीव–जन्तुओं पर भी पड़ता है। इससे जलचर भी पूरी तरह सुरक्षित नहीं हैं, क्योंकि सूर्य की किरणें एक मीटर की गहराई तक जल को पूर्णतः प्रभावित करने में सक्षम होती हैं, जो उस परिधि तक आने वाले जलचरों के लिए हानिकारक होती हैं। प्रयोगिक परीक्षणों से स्पष्ट हुआ है, कि एक पी०बी०एम० विटामिन वीटू की एक पी०पी०एम० उपस्थिति में भी पैरामिशियम नामक एक कोशिकीय जन्तु धूप से कुछ ही मिनटों में मर जाता है। विशेषतः पानी में प्रकाश संवेदनशील रसायनों की मात्रा उपलब्ध होने की स्थिति में, सूर्य की किरणों की घातकता बढ़ जाती है।

ड्राईकोलतार से प्राप्त होने वाले साइक्लिक हाइड्रोकार्बनों कीटनाशकों इत्यादि की सूक्ष्म मात्रा के साथ ही सूर्य किरणें काफी घातक और हानिकारक हो जाती हैं। सूर्य की किरणों के प्रभाव से थलचर भी सुरक्षित नहीं है। जानवरों आदि के बाल झड़ जाना, त्वचा का विकृत हो जाना आदि लक्षण उनमें भी पाये जाते हैं।

यद्यपि सौर ऊर्जा के बिना धरती पर जीवन की कल्पना करना हास्याप्रद है, वहीं दूसरी ओर हमें जीवनदान देने वाली सौर ऊर्जा घातक भी है, यह स्पष्ट भी हो चुका है।

हमारे ऋषि–मुनि तथा रोग विशेषज्ञ सूर्य किरणों से अनेकों रोगों का निदान करते थे। आयुर्वेद में तो सूर्य की किरणों की चिकित्सा की एक पूरी पद्धति ही विद्यमान है। यह तो सभी जानते हैं, कि सूर्य से हमें सूर्य की किरणें (प्रकाश) तथा ऊष्मा मुख्य रूप से दो किस्म की ऊर्जाएं प्राप्त होती हैं।

वनस्पतियां एवं पेड़ पौधे सूर्य किरणों की उपस्थिति में ही सौर ऊर्जा–संश्लेषण का कार्य करती हैं तथा भोजन करती हैं। इसके सिवाय सूर्य की किरणें, वातावरण में विद्यमान अनेक रोगों के विषाणुओं को नष्ट भी करती हैं।

वैज्ञानिकों के अनुसार-सूर्य हमारे सौरमण्डल का सबसे बड़ा चमकता दीप्तिमान ग्रह है, जिसकी सतह पर हीलियम तथा हाइड्रोजन नामक गैसें **विद्यमान** रहती हैं, जिनमें परस्पर नाभिकीय

विघटन एवं नाभिकीय संगठन की अनवरत रूप से प्रक्रिया चलती रहती है। इस नाभिकीय संगठन तथा विघटन की प्रक्रिया से ऊष्मा उत्पन्न होती है, जो ऊष्मा तथा इलैक्ट्रोमैगनेटिक किरणों के रूप में विकरित होती है, यही किरणें हमारी पृथ्वी पर भी पहुंचती हैं।

इलैक्ट्रोमैगनेटिक रश्मियों के प्रथम ऊर्जा संभाग को, प्रकाश के रूप में जबकि दूसरे प्रकार की ऊर्जा को, पराबैंगनी किरणें अथवा अल्ट्रावाइलेट रेंज के रूप में जाना जाता है। पराबैंगनी किरणें दिखाई नहीं देती हैं, पर इसमें ऊर्जा अत्यधिक पायी जाती है।

तरंग दैर्घ्यता के आधार पर, अल्ट्रावाइलेट रेंज को तीन भागों में बांटा गया है। प्रथम पराबैंगनी 'अ' अथवा यू०वी०ए०। वैज्ञानिकों ने इनका तरंग दैर्घ्य 320 से 400 नेनोमीटर माना है। द्वितीय पराबैंगनी 'ब' यू०वी०बी० जिसका तरंग दैर्घ्य 320 से 290 नेनोमीटर तथा तृतीय पराबैंगनी 'स' अथवा यू०वी०सी०, जिसका तरंग दैर्घ्य 200 से 290 नैनोमीटर होता है। पराबैंगनी 'स' अथवा यू०वी०सी० को सबसे खतरनाक शक्तिशाली एवं घातक बताया गया है।

पराबैंगनी 'अ' अथवा यू०वी०ए० किरणों में स्वयं जीवन को हानि पहुंचाने की क्षमता, नाम मात्र अथवा बिल्कुल भी नहीं है, परन्तु इनमें सबसे बड़ी खूबी यह है कि ये पराबैंगनी किरणें कुछेक प्रकाश संवेदनशील रसायनों के अणुओं से क्रियाशील होकर, उन्हें प्रभावित कर उत्तेजित कर देती हैं, जिसके परिणामस्वरूप रसायनिक अणु उत्तेजना कम करने के लिए ऊर्जा को ऊष्मा के रूप में अथवा फ्लोरेसेन्स के रूप में बाहर कर देते हैं। आशय यह है कि प्रकाश संवेदनशील रसायनिक अणु, उक्त प्रक्रिया के परिणामस्वरूप, अपनी ऊर्जा को, साथ में उपस्थित जीव रसायनिक अणुओं में स्थानान्तरित कर देते हैं। इस प्रकार अन्तः स्थित जीव रसायन, क्रियाशील होकर रूपान्तरित हो जाते हैं।

प्रकाश संवेदनशील अणुओं के द्वारा पराबैंगनी 'अ' अथवा यू०वी०ए० किरणों के साथ क्रियाशील होने की प्रक्रिया, मुख्य दो रूपों में दृष्टिगोचर होती है। प्रथम अवस्था में प्रकाश संवेदनशील अणु यू०वी०ए० किरणों के सम्पर्क में क्रियाशील रूप में उत्तेजित होकर स्वयं ही जीव रसायनों से क्रिया करने लगते हैं।

दूसरे प्रकार की प्रक्रिया में, उत्तेजित अणु अपनी ऊर्जा अपने

निकटवर्ती आक्सीजन अणुओं को स्थानान्तरित कर देते हैं। इस प्रक्रिया में उत्तेजित आक्सीजन रेडिकल का निर्माण होता है, जो हाइड्राक्सिस रेडिकल, सुपर आक्साइड रेडिकल, सिंग्लेट आक्सीजन आदि के रूप में जाने जाते हैं।

उक्त प्रक्रिया में बनने वाले विभिन्न रेडिकल,अत्यन्त खतरनाक एवं घातक होते हैं, जो अन्तः कोशिकीय जीव–रसायनों का आक्सीकरण करके, उन्हें विभिन्न स्वरूपों में परिवर्तित कर, ऊतकों को अनेक प्रकार से क्षति पहुंचाते हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है, कि यू०वी०ए० किरणें, जहां जीव रसायनों के सम्पर्क में आकर अत्यन्त घातक हो जाती हैं। वहीं दूसरे परिपेक्ष्य में ये स्वयं हानि पहुंचाने में अक्षम होती हैं।

यू०वी०बी० तथा यू०वी०सी० पराबैंगनी किरणें अत्यधिक शक्तिशाली प्रभावी एवं घातक होती हैं, परन्तु सौभाग्य से इन किरणों को पृथ्वी के चारों ओर के वातावरण के अणुओं द्वारा रोक लिया जाता है, इस आधार पर यू०वी०एं०किरणें पृथ्वी तक नहीं पहुंच पाती हैं।

पराबैंगनी 'व' अथवा यू०वी०बी० की अधिसंख्य घातक किरणों को भी पृथ्वी के चारों ओर पाई जाने वाली मण्डलीय स्ट्रेटोस्फयिरिक–ओजोन परत रोक लेती है, इसके कुछेक अंश ही पृथ्वी पर पहुँच पाते हैं। ओजोन परत को बेंधकर पृथ्वी पर पहुंचने वाली पराबैंगनी किरणें, जीवों के सतही ऊतकों में उपस्थित जीव रसायन यानि बायोकैमिकल जैसे अमीनों अम्ल, यूरोकैनिक अम्ल, न्यूक्लिक अम्ल, आदि के अणुओं में शोषित हो जाती हैं। इस प्रक्रिया से प्राप्त ऊर्जा द्वारा, ये अणु अभिक्रिया की प्रक्रिया से गुजरकर रूपान्तरण की क्रिया करते हैं, जिससे कोशिकाएं बुरी तरह क्षत विक्षत हो जाती हैं। गर्मी के दिनों में सूर्य की किरणें सीधी पृथ्वी पर पड़ती हैं, जिस कारण जाड़ों की अपेक्षा गर्मियों में यह क्रिया अधिक होती है।

घातक पराबैंगनी यू०वी०बी० किरणें यद्यपि ओजोन परत द्वारा रोक ली जाती हैं, परन्तु यहां पर यह अत्यन्त चिन्ता का विषय बन चुका है, कि ओजोन परत दिन प्रतिदिन क्षत–विक्षत होता जा रहा है,जिसमें कई छिद्र हो चुके हैं,जिनका व्यास ही सैंकड़ों किलोमीटर

है। वैज्ञानिकों ने इसको 'ओजोन होल' के नाम से नामकरण किया है।

जायज–नाजायज कारणों से प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते प्रहार, औद्योगीकरण से उत्पन्न सी०एफ०सी० गैसों–मुख्यतः क्लोरोफ्लोरो–कार्बन के कारण ही ओजोन परत पर भारी सुराख हो गया है, क्योंकि सी०एफ०सी० गैसें, ओजोन के साथ रासायनिक क्रियाशीलता में सक्षम हैं, सामान्यतया यह माना जाता है, कि प्रयोग के बाद इन खतरनाक क्लोरो–फ्लोरो–कार्बन गैसों को ऊपरी वायुमण्डल ओजोन की परत तक पहुंचने में, लगभग डेढ़ दशक का समय लगता है और वहां पहुंचने पर ये गैसें कई दशकों तक क्रियाशील रहती हैं।

सन् 1985 में सर्वप्रथम एक ब्रिटिश वैज्ञानिक ने ओजोन छतरी में सुराख का पता लगाया और उसके दुष्परिणामों की जानकारी दुनियां को देते हुए विश्व को चेताया। परन्तु इसके विपरीत दुनियां के देशों ने आशा के प्रतिरूप, घातक गैसों का उत्पादन घटाने में कोई रूचि नहीं ली। फलतः इस गैसों का सर्वाधिक उत्पादन 1988 वें वर्ष में 1260 हजार मैट्रिक टन रिकार्ड किया गया, तब यह लगने लगा था कि बहुत जल्द ओजोन परत बुरी तरह क्षत–विक्षत होकर दुनियां से जीवन को समाप्त कर देगी।

अस्सी के दशक के उत्तरार्द्ध में वैज्ञानिकों के निष्कर्षों से पता चला, कि शीतोष्ण अक्षांशों यानि टेम्प्रेट लेटिट्यूड पर सर्दी और गर्मी की ऋतुओं में ओजोन छतरी पर तीव्र रफ्तार से सुराख फैलता जा रहा है। अतः इसके भयंकर दुष्परिणामों तथा जीवमात्र के लिए निकट आते मृत्यु संदेश से, दुनियां की सरकारें जैसे कुम्भकर्णी नींद से जागी, और बहुचर्चित मांट्रियल सन्धि पर अमल करने हेतु हरकत में आयीं। जिसके कारण ही सन् 1987 में विश्व के प्रमुख सी०एफ०सी० उत्पादक 36 देशों ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर किये। जिसमें सी०एफ०सी० के उत्पादन में क्रमशः कटौती किये जाने का निर्णय लिया गया।

नव्वे दशक के प्रारम्भ में दुनियां के 92 देशों ने लन्दन में आयोजित एक अति महत्वपूर्ण सम्मेलन में, सन् 2000 तक क्रमबद्ध ढंग से सी०एफ०सी० का उत्पादन बन्द करने का निर्णय लिया। इसके

उपरान्त विश्व के अनेक देशों ने जिस तरह सी०एफ०सी० के उत्पादन पर प्रतिबन्ध लगाने के सन्दर्भ में ईमानदारी बरती, उससे ओजोन की परत फटने से सम्भावित जन विनाश की समाप्ति का रास्ता खुला।

सौर ऊर्जा की घातक पराबैंगनी किरणों से बचाव के प्रति हमेशा सावधान रहना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु और दोपहर बारह से दो बजे के बीच, टोपी, धूप चश्मा पहनना अथवा छाता ओढ़ना बचाव का सर्वोत्तम उपाय है। दोपहर बारह बजे से दो बजे के मध्य, सूर्य की रश्मियों में सर्वाधिक पराबैंगनी किरणें पायी जाती हैं। भोजन में एन्टी आक्सीडेन्ट युक्त पदार्थ, जैसे हल्दी, गाजर, पात गोभी, नींबू, गाय का घी आदि प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि ये पदार्थ पराबैंगनी किरणों से उत्पन्न आक्सीकरण द्वारा ऊतकों की क्षति रोकने में सहायक होते हैं।

प्रकाश संवेदनशील रसायनों, रंगों, कीटनाशकों, पेट्रोलियम पदार्थों के प्रयोग के उपरान्त, सावधानी से शरीर के खुले अंगों–हिस्सों को अच्छी तरह धो लेना चाहिए। सनस्क्रीन युक्त क्रीम को खुले अंगों तथा चेहरे पर लगाना भी इससे बचने के लिए लाभकारी होता है।
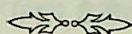
8

फ्लोराइड युक्त टूथपेस्ट के दुष्प्रभाव

फ्लोराइड का अल्प एवं समुचित प्रयोग, जहाँ शरीर की अस्थियों एवं दाँतों की बेहत्तर सुरक्षा दे सकता है, वहीं दूसरी ओर फ्लोराइड की अधिक मात्रा, बेहद घातक एवं स्वास्थ के लिए अहितकारी होती है। फ्लोराइड की अधिक मात्रा हड्डियों एवं दाँतों के लिए खतरनाक तो होती ही है, पर यह अस्थिसन्धियों, जोड़ों तथा दाँतों की जड़ों को धीरे–धीरे गलाकर क्षतिग्रस्त करने का काम भी करती है।

घातक बीमारी "फ्लूओरोसिस" की व्याधि की मूल जड़ ही यही फ्लोराइड है, जिसमें प्रारम्भ में दाँतों पर उजले धब्बे होते हैं, जो समयावधि के साथ–साथ बढ़ते हुए भूरे, काले, कत्थई अथवा पीले धब्बों के रूप में फैलते चले जाते हैं। इसे मध्यम–दन्त–फ्लूओरोसिस कहते हैं। दूसरी स्थिति को तीव्र फ्लूओरोसिस के नाम से जाना जाता है। इस स्थिति में दाँत सड़ने लगते हैं। दन्त पक्तियाँ कमजोर होकर हिलने लगती है तथा तरह–तरह के विकार उत्पन्न होने लगते हैं। फ्लोराइड मानव शरीर में प्रवेश के बाद आधे घंटे के अन्तराल में आमाशय–आँतों द्वारा होता हुआ, शरीर में प्रवेश कर जाता है। इसका कुछ भाग हमारी अस्थियों में जमा होता है और अधिसंख्य भाग मूत्र के माध्यम से बाहर निकल जाता है।

500 से 1000 पी०पी०एम० तक सीमा में रहते हुए फ्लोराइड स्वास्थ के लिए अत्यन्त लाभदायक है। यह मात्रा दाँतों की सड़न रोकने में सक्षम होती है, दाँतों के एनेमल के साथ सक्रिय रहकर यह उसे अधिक सुरक्षित और कठोर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

हमारे भोजन के उपरान्त भोजन के कई अवशेष दाँतों में रह जाते हैं, जिसमें वैक्टिरियाज जमा होने लगते हैं। जिससे दाँतों के बाहर एक साधारण अथवा कठोर परत जमा होने लगती है। दाँतों के बाहर बन रही इस परत के कारण ही उनमें एसिड बनाना प्रारम्भ होता है। जिसकी परिणीति एनमेल क्षय होकर,दाँतों में छिद्र बनने प्रारम्भ हो जाते हैं। जबकि समुचित मात्रा का फ्लोराइड कीटाणुओं को नष्ट कर दाँतों की रक्षा करता हैं।

अधिक फ्लोराइड दाँतों के सिवाय शरीर की अस्थियों के लिए भी घातक होता है। फ्लोराइड की अधिक मात्रा होने के कारण "फ्लोरोसिस आस्टिओस्कलोरोसिस" नामक अत्यन्त खतरनाक बीमारी हो जाती है। इस स्थिति में हड्डियों में अतिरिक्त कैल्शियम जमा होने लगता है, जिसके कारण लिगमेन्ट और टेन्शन जोड़ जकड़ने लगते है, उनके सुगमता से हिलने व क्रियाशील रहने की क्रिया में बाधा पड़ती है और व्यक्ति का उठना बैठना, चलना, फिरना कठिन हो जाता हैं।

फ्लोराइड "हेलोजन ग्रुप" के रसायन का एक तीव्र रसायानिक पदार्थ है। प्रकृति में फ्लोराइड मुख्यतः सोडियम फ्लोराइड के रूप में मिलता है। भारतवर्ष में कुओं–नलकूपों–जल श्रोतों में फ्लोराइड की न्यूनतम मात्रा 0-5 मिलीग्राम प्रति लीटर तक पायी जाती है। अनेक स्थानों पर पानी में फ्लोराइड की मात्रा 12 मिलीग्राम प्रति लीटर तक भी पायी गयी है। इसके अलावा फ्लोरीन, मछली, चाय, मिट्टी, पनीर, साग–सब्जी, फलों, पेड़–पौधों मिट्टी में भी पाया जाता है। अधिक फ्लोरीन युक्त पानी में फास्फेट, अल्यूमिनियम कम्पाउण्ड, आयरन एक्सचेन्ज, वरेजीन आदि मिलाकर इसे नियन्त्रित किया जा सकता है। जिस व्यक्ति को मध्यम अथवा तीव्र किस्म की दन्त फ्लूओरोसिस की व्याधि है। उसे फ्लोराइड जल, फ्लोराइड वारनिश, फ्लोराइड मुखधोवन, फ्लोराइड गोलियाँ अथवा फ्लोराइड युक्त टूथपेस्टों के इस्तेमाल से पूरी तरह बचना चाहिए।

टूथपेस्टों में फ्लोराइड के मिश्रण की प्रक्रिया आज दुनियाँ के अधिसंख्य देशों में प्रचलन में हैं। यद्यपि विकसित एवं कुछ विकासशील देश टूथपेस्टों में फ्लोराइड के मिश्रण व परिमाण में ध्यान देने लगे हैं। परन्तु फिर भी टूथपेस्टों में फ्लोराइड मिलाने

की प्रक्रिया को प्रतिबन्धित करना सरल नहीं है। हमारे देश भारतवर्ष में तो टूथपेस्टों में खुलकर फ्लोराइड का इस्तेमाल किया जा रहा है। जो फ्लोराइड इस्तेमाल किया जा रहा है, वह भी अशुद्ध होता है। जिससे इसकी घातकता और भी बढ़ जाती है।

फ्लोराइड की अशुद्धता का कारण उसके बनाये जाने में चाक अभ्रक, कैल्सियम कार्बोनेट को फिल्टर की तरह मिलाया जाना है। इस तरह के मिश्रण में अशुद्ध भाग आठ सौ से एक हजार पी०पी०एम० तक होता है। यह अशुद्ध भाग ब्रुश करते समय शरीर में चला जाता है, जो विभिन्न प्रकार की स्वास्थ समस्याएं पैदा करता है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भी टूथपेस्ट उद्योग में इसी तरह की निम्न स्तरीय प्रौद्योगिकी से सम्बद्ध रह कर दुनियाँ को जहर बाँटने में पीछे नहीं हैं। अधिक फ्लोराइड अथवा अशुद्ध फ्लोराइडयुक्त टूथपेस्टों पर पूर्णतः प्रतिबध लगाना आवश्यक है। सबसे बेहतर तो यही होता कि टूथपेस्टों में फ्लोराइड के मिश्रण पर ही पूर्णतः प्रतिबध लगा दिया जाता। पूँजीपति बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगे पंगु बनी दुनियाँ की सरकारें यदि जनहित में यह कार्य नहीं कर पाती हैं, तो इतना तो अवश्य किया जाना चाहिए, कि टूथपेस्टों में 1000 पी०पी०एम० से अधिक फ्लोराइड के इस्तेमाल पर रोक लगाकर, उसके क्रियान्वयन में पूर्ण सतर्कता बरती जाए। इस बात का विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक है, कि प्रयोग किया जाने वाला फ्लोराइड अशुद्ध न हो। फ्लोराइड युक्त टूथपेस्टों में "फ्लोराइड युक्त टूथपेस्ट" तथा चेतावनी अवश्य दर्शायी जानी चाहिए।

यहाँ पर यह चर्चा उल्लेखनीय है, कि कम उम्र के बच्चों के लिए फ्लोराइड युक्त टूथपेस्ट का इस्तेमाल अत्यधिक घातक है। सात साल के उम्र तक के बच्चों का फ्लोराइड युक्त टूथपेस्ट का बिल्कुल भी इस्तेमाल नहीं करने देना चाहिए। सम्भव हो सके तो बच्चों को किशोरावस्था तक इस श्रेणी के टूथपेस्टों से दूर ही रखना चाहिए। स्वास्थ की दृष्टि फ्लोराइडयुक्त टूथपेस्टों का प्रयोग करने के बजाय परम्परागत दन्त मन्जनों जैसे नीम के दातून, आम, अखरोट आदि वनस्पतियों की छाल से स्वनिर्मित मन्जनों का प्रयोग किया जाना सबसे बेहत्तर है।
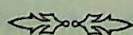
9

ध्वनि प्रदूषण के दुष्प्रभाव

शोर अथवा तीव्र ध्वनि भी स्वास्थ की दृष्टि से अत्यधिक हानिकारक है। बढ़ते औद्योगीकरण, वाहनों, फैक्ट्रियों, आदि के द्वारा शोर बढ़ता ही चला जा रहा है।

भारत वर्ष में शोर का स्तर काफी ऊँचा है, परन्तु अभी तक इस प्रदूषण को रोकने हेतु समुचित उपाय नहीं किये गये हैं। जिससे देश के महानगरों, नगरों, शहरों आदि का ध्वनि प्रदूषण का स्तर लगातार ऊपर उठता चला जा रहा है।

भारत वर्ष के कई शहरों का शोर 100 डेसिबल से ऊपर पहुँच चुका है। डेसिवल शोर मापन का एक प्रमाणित वैज्ञानिक माप है। सामान्यतया डेसिवल के हिसाब से हृदय की धड़कन को 13, फुसफुसाहट को 30, औसत शहरी घर–45, दफ्तर–55, सामान्य बातचीत–65, शहरी सड़क 73, राष्ट्रीय मार्ग का यातायात–80, जोर से चिल्लाने की आवाज–90, शेर की दहाड़–95, फैक्टरी का ब्वायलर 110, हवाई जहाज का जेट इन्जन–120 डेसिवल अनुमानित किया गया है।

भारतवर्ष के प्रमुख शहर, पश्चिमी देशों के शहरों से कहीं अधिक शोर मचाने वाले शहर माने गये हैं, इसका प्रमुख कारण ही भारतवर्ष का शोर प्रदूषण की ओर कोई ध्यान नहीं देना है।

देश में चलने वाले कारखाने, फैक्ट्रियाँ, वाहन, पुरानी व घिसी पीटी मशीनें–वाहन, हवाई जहाज, रेलगाड़ियाँ आदि शोर मचाने वाले कारक हैं। भारत वर्ष में शोर मचाने का एक अन्य कारण धार्मिक उत्सव भी हैं। देश में कथित धर्मास्तिकों को लाउडस्पीकर

पर दिन–रात चीखने–चिल्लाने की खुली छूट है। कुछ सम्प्रदायों में तो शोर मचाने की प्रतियोगिता सी चली नजर आती है। इन आस्तिकों को कौन समझाये, कि भगवान भक्ति भावना से प्रसन्न होते हैं न कि ऊँचा शोर मचाने से।

शोर के आधार पर लगता है, कि चल रही पूजा पाठ–मात्र दिखावे के लिए हो रही है, इसके सिवाय रेडियो, ट्रांजिस्टर, टी. वी., स्टीरियो आदि तथा अन्य धार्मिक उत्सव, शादी, जन्मदिन व सामाजिक उत्सव आदि भी शोर गुल बढ़ाने में अच्छा खासा योगदान देते हैं।

इन्हीं सब कारणों के चलते भारत के प्रमुख शहर बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता में शोर का स्तर 95 डेसिवल के 100 डेसिवल के आसपास औसत स्तर पर पहुँच चुका है। कहीं–कहीं पर तो इसका स्तर काफी ऊँचा है।

90 डेसिवल तक परिमाण का शोर, लगातार चलता रहे तो इससे स्थाई बहरापन हो सकता है, अधिक शोर में रहने के कारण सिर चकराना, सिर में दर्द, स्नायु रोग, तथा पेट की शिकायतें पायी जाती है। शोर का असर गर्भस्थ शिशु पर भी पड़ता है। वह जन्म से ही बहरा हो सकता हैं।

अधिक शोर व्यक्ति के कान के पर्दों पर भी व्यापक असर डालता है। औसत सीमा से अधिक शोर हल्का बहरापन देता है। सुनने की शक्ति क्षीण होती चली जाती हैं।

शोर समाज व मानव के लिए एक आफत ही नहीं, बल्कि स्वास्थ की दृष्टि से भी नुकसानदेह हैं, पश्चिमी राष्ट्रों में शोर रोकने के लिए बहुत पहले ही कठोर नियम कानून बनाये जा चुके हैं, जिसके तहत शोर को नियन्त्रित किया जाता है। साथ ही वहाँ की जनता भी शोर के प्रति पर्याप्त जागृत भी है। नियम कानूनों के बल पर तथा जनता के सहयोग से उन देशों में शोर पर नियन्त्रण बना रहता है।

दुनियाँ के जिन देशों ने शोर रोकने हेतु नियम–कानून नहीं बनाये हैं, उन्हें भी बढ़ते इस ध्वनि प्रदूषण से निजात पाने हेतु कठोर नियम कानून बनाने चाहिए और उन्हें कड़ाई से लागू किया

जाना चाहिए। साथ ही यह भी आवश्यक है, कि शोर के प्रति जनता में जागृति लायी जाय।

स्वास्थ पर पड़ने वाले उसके दुष्प्रभावों के बारे में उन्हें अवगत कराया जाय। वाहनों एवं कारखानों में ध्वनि–नियन्त्रकों का अधिकाधिक प्रयोग किया जाय, साथ ही मांगलिक उत्सवों, धार्मिक–सामाजिक उत्सवों में दूसरे की शान्ति भंग करने की इजाजत किसी को न दी जाय, विशेष कारणों को छोड़कर लाउडस्पीकरों के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाने से भी शोर को काफी हद तक नियन्त्रित किया जा सकता हैं। अन्यथा समाज के स्थाई बहरेपन के आमन्त्रण को रोकना सम्भव नहीं होगा।

10
जल प्रदूषण के दुष्प्रभाव

जल जहां पर्यावरण का एक अति महत्वपूर्ण अंग है, वहीं दूसरी ओर जल के बिना जीवन की कल्पना करना निरर्थक है, जल केवल जीव–जन्तुओं व प्राणिमात्र ही नहीं, वनस्पतियों के लिए भी आवश्यक है। जल का हमारे जीवन एवं स्वास्थ से गहरा सम्बन्ध है।

जल के मामले में हमारे देश भारत को, अति सम्पन्नतम देशों में गिना जा सकता है। हमारे देश की औसत वर्षा 1,170 मि०मी० है तथा अधिकतम 11,400 बतायी गयी है, जबकि सर्वसम्पन्न देश अमेरिका में वर्षा का औसत मात्र 200 मि०मी० है। ऐसे जल सम्पन्न भारत वर्ष में लगातार शुद्ध पेयजल का अकाल बढ़ता ही चला जा रहा है। देश अपनी औसत वर्षा का एक दशवां हिस्सा भी संग्रह नहीं कर पा रहा है। खनन, जंगलों का भयंकर रूप से दोहन, बड़े बांधों का निर्माण, भूमि प्रबन्ध की लापरवाही के कारण, पानी प्रतिवर्ष बाढ़ आदि के माध्यम से करोड़ों, अरबों रूपयों की क्षति पहुंचा जाता है।

वर्षा से हमें जो जल प्राप्त होता है, उसे भारत वर्ष संभाल नहीं पा रहा और जो बहुमूल्यवान भूमिगत जल है उसका लगातार विदोहन किया जा रहा है। जिससे लगातार भूमिगत जल स्तर घटता चला जा रहा है। जल प्रबन्ध की सारे देश में इतनी अधिक कुव्यवस्थाएं हैं, कि जो शुद्ध पेयजल बचा है, उसे भी लगातार प्रदूषित किया जा रहा है। तब ऐसा लगता है कि इस देश में नियम–कानून केवल फायलों और नोटों में सिमट

कर रह गये हैं।

नलकूपों की लगातार बढ़ती जनसंख्या ने भूमिगत जल के समाप्ति के द्वार खोल लिए हैं। देश की नदियां, जिन्हें कभी देवी का प्रतिरूप मानकर पूजा की जाती थी, आज शहरों की गन्दगी, औद्योगिक कचरों के ढेर बन गयी हैं। बढ़ते औद्योगीकरण के कारण भूमिगत जल भी लगातार प्रदूषित होता जा रहा है। अनेकों शहरों में इसी कारण आज हैण्डपम्पों का पानी पीने लायक नहीं रह गया है।

देश में स्व निर्मित अथवा कृत्रिम जलाशय, पोखर, झीलें, कुएं, तालाबों की पूरी उपेक्षा कर उन्हें या तो मिटा दिया गया है अथवा औद्योगिक कचरा एवं शहर की गन्दगी का गाद बना दिया गया है। अधिसंख्य पेयजल की किल्लत, बाढ़, सूखा प्रकृतिप्रदत्त नहीं, देश की कुव्यवस्थाओं का परिणाम है। जल संसाधनों के प्रति बरती जा रही इस तरह की लापरवाही, कुव्यवस्था निश्चित तौर पर भविष्य में हालातों को इतना अधिक जटिल बना देगी, जिसका समाधान सम्भव नहीं हो पायेगा।

भूमिगत जल के सन्दर्भ में बीसवीं शताब्दी के सत्तर के दशक में राष्ट्रीय कृषि आयोग के वी०एस० नाग एवं जी०एन० कठपालिया ने जलचक्र का एक खाका खींचकर अवगत कराया था, कि एक वर्ष के अन्तराल में देश में 40 करोड़ हेक्टेअर मीटर पानी बहता है, जिसमें से मात्र 3.80 करोड़ हेक्टेयर मीटर ही पानी उपयोग में लाया जाता है। आंकड़े का यह प्रतिशत देश की अक्षमता और लापरवाही की ओर संकेत करता है।

उनका यह भी कहना था, कि देश में जो प्रतिवर्ष 40 करोड़ हेक्टेअर मीटर पानी मिलता है, उसमें से 7.00 क.हे.मी. पानी भाप बनकर उड़ जाता है, 21.5 क.हे.मी. भूमि में जज्ब हो जाता है तथा 11.5 क.हे.मी. नदी–नालों से होकर बहता है।

आंकड़े स्पष्ट करते हैं, कि देशवासी वर्षा के द्वारा प्रकृति प्रदत्त पानी का सही उपयोग नहीं कर पाते हैं, जिस कारण लगातार भूमिगत जल का दवाब बढ़ता ही चला जा रहा है। भूमिगत जल श्रोत का अधिकांश भाग सिंचाई के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। पानी के सम्पूर्ण इस्तेमाल का आंकड़ा देखें

10
जल प्रदूषण के दुष्प्रभाव

जल जहां पर्यावरण का एक अति महत्वपूर्ण अंग है, वहीं दूसरी ओर जल के बिना जीवन की कल्पना करना निरर्थक है, जल केवल जीव–जन्तुओं व प्राणिमात्र ही नहीं, वनस्पतियों के लिए भी आवश्यक है। जल का हमारे जीवन एवं स्वास्थ से गहरा सम्बन्ध है।

जल के मामले में हमारे देश भारत को, अति सम्पन्नतम देशों में गिना जा सकता है। हमारे देश की औसत वर्षा 1,170 मि०मी० है तथा अधिकतम 11,400 बतायी गयी है, जबकि सर्वसम्पन्न देश अमेरिका में वर्षा का औसत मात्र 200 मि०मी० है। ऐसे जल सम्पन्न भारत वर्ष में लगातार शुद्ध पेयजल का अकाल बढ़ता ही चला जा रहा है। देश अपनी औसत वर्षा का एक दशवां हिस्सा भी संग्रह नहीं कर पा रहा है। खनन, जंगलों का भयंकर रूप से दोहन, बड़े बांधों का निर्माण, भूमि प्रबन्ध की लापरवाही के कारण, पानी प्रतिवर्ष बाढ़ आदि के माध्यम से करोड़ों, अरबों रूपयों की क्षति पहुंचा जाता है।

वर्षा से हमें जो जल प्राप्त होता है, उसे भारत वर्ष संभाल नहीं पा रहा और जो बहुमूल्यवान भूमिगत जल है उसका लगातार विदोहन किया जा रहा है। जिससे लगातार भूमिगत जल स्तर घटता चला जा रहा है। जल प्रबन्ध की सारे देश में इतनी अधिक कुव्यवस्थाएं हैं, कि जो शुद्ध पेयजल बचा है, उसे भी लगातार प्रदूषित किया जा रहा है। तब ऐसा लगता है कि इस देश में नियम–कानून केवल फायलों और नोटों में सिमट

कर रह गये हैं।

नलकूपों की लगातार बढ़ती जनसंख्या ने भूमिगत जल के समाप्ति के द्वार खोल लिए हैं। देश की नदियां, जिन्हें कभी देवी का प्रतिरूप मानकर पूजा की जाती थी, आज शहरों की गन्दगी, औद्योगिक कचरों के ढेर बन गयी हैं। बढ़ते औद्योगीकरण के कारण भूमिगत जल भी लगातार प्रदूषित होता जा रहा है। अनेकों शहरों में इसी कारण आज हैण्डपम्पों का पानी पीने लायक नहीं रह गया है।

देश में स्व निर्मित अथवा कृत्रिम जलाशय, पोखर, झीलें, कुएं, तालाबों की पूरी उपेक्षा कर उन्हें या तो मिटा दिया गया है अथवा औद्योगिक कचरा एवं शहर की गन्दगी का गाद बना दिया गया है। अधिसंख्य पेयजल की किल्लत, बाढ़, सूखा प्रकृतिप्रदत्त नहीं, देश की कुव्यवस्थाओं का परिणाम है। जल संसाधनों के प्रति बरती जा रही इस तरह की लापरवाही, कुव्यवस्था निश्चित तौर पर भविष्य में हालातों को इतना अधिक जटिल बना देगी, जिसका समाधान सम्भव नहीं हो पायेगा।

भूमिगत जल के सन्दर्भ में बीसवीं शताब्दी के सत्तर के दशक में राष्ट्रीय कृषि आयोग के वी०एस० नाग एवं जी०एन० कठपालिया ने जलचक्र का एक खाका खींचकर अवगत कराया था, कि एक वर्ष के अन्तराल में देश में 40 करोड़ हेक्टेअर मीटर पानी बहता है, जिसमें से मात्र 3.80 करोड़ हेक्टेयर मीटर ही पानी उपयोग में लाया जाता है। आंकड़े का यह प्रतिशत देश की अक्षमता और लापरवाही की ओर संकेत करता है।

उनका यह भी कहना था, कि देश में जो प्रतिवर्ष 40 करोड़ हेक्टेअर मीटर पानी मिलता है, उसमें से 7.00 क.हे.मी. पानी भाप बनकर उड़ जाता है, 21.5 क.हे.मी. भूमि में जज्ब हो जाता है तथा 11.5 क.हे.मी. नदी–नालों से होकर बहता है।

आंकड़े स्पष्ट करते हैं, कि देशवासी वर्षा के द्वारा प्रकृति प्रदत्त पानी का सही उपयोग नहीं कर पाते हैं, जिस कारण लगातार भूमिगत जल का दवाब बढ़ता ही चला जा रहा है। भूमिगत जल श्रोत का अधिकांश भाग सिंचाई के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। पानी के सम्पूर्ण इस्तेमाल का आंकड़ा देखें

तो स्पष्ट होता है कि कुल उपयोग के पानी का 90 प्रतिशत से अधिक पानी का प्रयोग सिंचाई के लिए किया जा रहा है। अवशेष 7 आठ प्रतिशत पानी ही घरेलू एवं औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहा है। पेयजल के उपयोग का यह आंकड़ा अत्यन्त गम्भीर है, क्योंकि जिस तरह अन्धाधुन्ध पेयजल का दुरपयोग किया जा रहा है उससे स्पष्ट है कि आने वाले दिनों में देश को भारी पेयजल की किल्लत झेलनी पड़ेगी। और धीरे-धीरे शुद्ध पानी एक दिवास्वप्न बन जायेगा।

पर्यावरण विनाश एवं जल दुरपयोग के कारण, दुनियां में प्रतिवर्ष हजारों लोग मौत के मुंह में समा जाते हैं तथा लाखों बेघर हो जाते हैं, प्राकृतिक विपदाओं के हिसाब से हिन्दुस्तान में, प्राप्त आंकड़े के अनुसार 1960 से 1981 के बीच बाढ़ से 15,000 तथा तूफान से 25,000 कुल 40,000 लोग मारे गये थे, इसमें मवेशियों की गणना नहीं है। मवेशियों को मिलाकर देखें तो प्रतिवर्ष एक लाख से दो लाख के बीच, मनुष्य और मवेशी, इन दो प्राकृतिक आपदाओं की भेंट चढ़ जाते हैं। बाढ़ के बाद जो महामारी अथवा बीमारियां होती हैं, तथा उससे जो जन-धन की क्षति होती है वह और भी डरावनी है। उल्लेखनीय है, कि भारत की कुल जनसंख्या का एक तिहाई भाग से अधिक जनसंख्या उन स्थानों पर बसती है, जहां बाढ़ आती है अथवा बाढ़ आने की लगातार संभावनाएं बनी रहती हैं। अनेक स्थानों पर तो बाढ़ अब अचानक भी आने लगी है।

बाढ़ से जो प्रत्यक्ष हानि होती है, उससे पूरे देश की अर्थव्यवस्था पर प्रतिवर्ष करारा झटका लगता है। आंकड़े उठाकर देखें तो स्पष्ट है, कि सन् 1983 में ही 2,292 करोड़ रुपयों की हानि का अनुमान लगाया गया था, 1953 से 1983 तक खेती और शहरी सम्पत्ति मिलाकर जो हानि हुई वह 14,200 करोड़ रुपयों से अधिक थी, वास्तविक तौर पर देखा जाय तो ये उपलब्ध आंकड़े आधे-अधूरे हैं, जबकि वास्तविक अनुमान है कि बाढ़ से इससे कई गुना अधिक हानि हुई।

अस्सी के दशक में दामोदर घाटी पर बने बांधों से पानी छोड़ने के कारण जो बाढ़ आयी उससे दक्षिण बंगाल के मात्र

दस जिलों में ही 30 लाख लोग तबाह हुए थे।

पानी के सन्दर्भ में भारत वर्ष की सबसे अधिक विडम्बना यह है, कि जहां देश में पानी के समुचित एवं हानिरहित भण्डारण की ओर किसी का ध्यान नहीं गया है, वहीं दूसरी ओर भूमिगत जल का लगातार दोहन के साथ–साथ यह भी अत्यन्त चिन्तनीय विषय है, कि उपलब्ध श्रोत व पेयजल के अन्य श्रोत औद्योगीकरण–शहरीकरण आदि से लगातार प्रदूषित होते जा रहे हैं। जल ही जीवन है, अथवा जीवन ही जल है का नारा मात्र एक तोता रटन्त वाक्य बनकर रह गया है।

शहरीकरण, पेयजल के लिए जिस तरह घातक बनता जा रहा है, उससे अधिक औद्योगीकरण, जल को जहर बनाने की भूमिका लगातार अदा करते चला आ रहा है। लगभग हर मध्यम अथवा बड़ी इकाई जल को किसी न किसी रूप में अवश्य ही प्रदूषित करती है। उद्योग का प्रकार उसके प्रभावों को कम या अधिक कर सकती है। उद्योगों से निकलने वाले अवशेषों में जिस तरह वृद्धि हो रही है, शुद्ध पेयजल उसी रफ्तार से प्रदूषित होता जा रहा है, यहां तक कि बिजली का उत्पादन बढ़ने के साथ गरम गन्दे पानी के कारण, अनेक नदियों के पानी में आक्सीजन की मात्रा पर्याप्त रूप से घट गयी है। बाँधों के पानी में भी आक्सीजन की मात्रा नाममात्र की रह जाती है। इसलिए बांधों के तल में मछलियां नहीं पायी जाती हैं।

भारतवर्ष में औद्योगिक कचरे एवं शहरीकरण के कारण देश की नदियों का पानी पीने लायक नहीं रह गया है, नदी स्वच्छता अभियान भी नदियों के जल की मिठास और स्वच्छता नहीं लौटा पाये हैं। करोड़ों रुपये बर्बाद करने के बाद भी प्रगति के नाम पर कार्य शून्य ही माना जा सकता है। औद्योगिक घरानों को जनप्रतिनिधियों से लेकर शासन–प्रशासन तक का अप्रत्यक्ष सहयोग मिला रहता है। जिससे पर्यावरण बचाव के कार्यों की प्रगति मात्र कागजों तक सीमित रह जाती है। प्रदूषण निवारक यन्त्रों रिफ्लैक्टरों को या तो लगाया ही नहीं जाता या फिर लगवा कर उनसे स्टाफ, बिजली आदि की बचत के लिए कार्य नहीं लिया जाता है, अथवा वे खराब रहते या होते हैं। उनकी समुचित

उपयोग, मरम्मत, देखभाल नहीं की जाती है।

भौतिकवादी प्रवृति के कारण लोग अपने तक तथा केवल रुपये–पैसों तक सिमट गये हैं। औद्योगिक घरानों का एकमात्र लक्ष्य पैसा कमाना होता है। पैसा कमाने के लिए यदि सम्पूर्ण पेयजल ही समाप्त भी हो जाय, तो उन्हें कुछ लेना नहीं है, क्योंकि वे विदेशों से भी वाष्पीकृत शुद्ध पेयजल खरीदने की क्षमता रखते हैं। भ्रष्टाचार का इतना अधिक बोलबाला हो गया है, कि पर्यावरण की शुद्धता के लिए नियत किये कर्मचारी-अधिकारी, अपनी जेबें गरम कर हमेशा उल्टी–सुल्टी गलत सूचनाएं आगे भिजवा देते हैं। इन सब कारणों के चलते भारतवर्ष में आगामी कुछेक वर्षों में शुद्ध पेयजल का भारी अकाल पड़ जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी, क्योंकि जिस देश के अधिसंख्य नागरिकों–कर्मचारियों–उद्योगपतियों–अधिकारियों–जिम्मेदार व्यक्तियों ने अपना ईमान नैतिकता–मानवता, रुपयों के चन्द टुकड़ों में बेच दी हो उस देश के जल–प्रदूषण का हाल बेहाल होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

भूमिगत जल किसी भी देश की सबसे बड़ी पूंजी होती है। भूमिगत जल के जलाशयों में सतही जलाशयों की तरह रिसाव नहीं होता है तथा वाष्पीकरण की प्रक्रिया तो नाममात्र की होती है, जो नहीं के बराबर है। औद्योगिक कचरे से यदि भूमिगत जल को सुरक्षित रखा जाय, तो इसके प्रदूषित होने का खतरा भी नहीं के बराबर होता है। इस जल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें पानी के जमाव से होने वाली समस्या उत्पन्न नहीं होती। पर यह भारतवर्ष की सबसे बड़ी विडम्बना है, कि भूमिगत जल का अवाध दोहन और उसे प्रदूषित करने की प्रक्रिया आजादी से पूर्व ही प्रारम्भ की जा चुकी थी, जो आज खतरनाक मोड़ में पहुंच चुकी है।

औद्योगिक कचरों से भूमिगत जल विषाक्त तो होता ही है साथ ही इस जल के विदोहन के लिए सर्वाधिक जिम्मेदार देश में लगाये गये नलकूपों की बाढ़ भी है। हिन्दुस्तान में नलकूपों का प्रचलन बीसवीं शताब्दी के तीसवें दशक में प्रारम्भ हुआ था। धीरे–धीरे नलकूपों का प्रचलन इस तरह बढ़ा, कि मात्र साठ के

दशक में 50,000 नलकूप बने और इस दशक की समाप्ति के मात्र एक ही साल में 1,72,000 निजी नलकूप लगाये गये, नलकूपों की निरन्तर बढ़ती जनसंख्या आज करोड़ों की संख्या को पार कर गयी है।

नलकूपों द्वारा लगातार भूमिगत जल भण्डार का निर्दयतापूर्वक विदोहन किया जा रहा है, जिससे पेयजल का यह सुरक्षित भण्डार दिन-प्रतिदिन समाप्ति की ओर बढ़ता चला जा रहा है। इनके कारण आज अधिसंख्य स्थानों का जलस्तर घटकर काफी नीचे चला गया है। यद्यपि नलकूपों द्वारा अपहृत पानी के बदले प्रकृति भराव की प्रक्रिया अपनाती है, पर भूमिगत जलहरण की प्रक्रिया के सामने, प्रकृति द्वारा भराव की मात्रा काफी कम है। नलकूपों के कारण कहीं कहीं तो सतही भूमिगत जल 100 (सौ) फुट से अधिक नीचे चला गया है, इन स्थानों की भूमि मरुस्थल बनने की तैयारी में जुटने लगी है।

भूमिगत जल स्तर घटने से देश के अनेकों स्थानों पर पेयजल का अकाल विगत कई दशकों से दिखने लगा है। भूमिगत जलस्तर समाप्त होने पर सबसे बड़ा कहर मवेशियों के ऊपर गिरता है। जो प्रदूषित जल पीने को बाध्य होते हैं। उनके द्वारा पिये जल के विषाक्त अवयव, दूध अथवा शिकार के माध्यम से मानव शरीर में पहुंचते हैं।

सिंचाई के लिए भूमिगत जल का उपयोग एक अभिशाप ही नहीं बल्कि प्रकृति तथा प्राणिमात्र के एक ऐसा भयंकर कोढ़ है, जिसका कोई इलाज नहीं है। जिन क्षेत्रों में भूमिगत जल का विदोहन लगातार किया जा रहा है, उन क्षेत्रों में खतरनाक रूप से प्रतिवर्ष, एक से दो मीटर तक भूमिगत जल नीचे खिसकता चला जा रहा है, यह स्थिति चिन्तनीय ही नहीं बल्कि भयावह भी है।

भूमिगत जल के अत्यधिक विदोहन के कारण, उसमें समुद्र का खारा पानी भी रिसकर आ सकता है, इस स्थिति में उस क्षेत्र में जो थोड़ा-बहुत भूमिगत जल भण्डार बचा है, उसका खारे जल से मिलकर सिंचाई-पीने आदि के उपयोग के लिए न रहने का खतरा भी हमेशा बना रहता है, क्योंकि खारा जल किसी भी

काम का नहीं होता है। इस तरह की घटना 1970 में प्रकाश में आयी, जब समुद्र का खारा पानी गुजरात के सौराष्ट्र के दक्षिणी तटवर्ती हिस्सों के भूमिगत श्रोतों में घुस आया था, सूरत में भी यही समस्या देखने को मिली। जिससे उन क्षेत्रों के पैदावार पर भारी असर देखने को मिला तथा अशुद्ध पेयजल से होने वाली बीमारियां अप्रत्याशित रूप से बढ़ गयी। इसी तरह तमिलनाडु, मद्रास आदि कई समुद्र तटीय क्षेत्रों में, इसी तरह की समस्याएं उभरने लगी हैं। समुद्रतटीय क्षेत्र जब खारे जल से पूरी तरह बर्बाद हो जायेंगे, उसके बाद यह प्रक्रिया भूमि के अन्य भीतरी हिस्सों में चलनी प्रारम्भ हो जायेगी और अन्तिम चरण में सम्पूर्ण भूमिगत जल के खार–युक्त होने की सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता।

भूमिगत जल के लिए जहां नलकूप अभिशाप साबित हुए हैं। वहीं दूसरी ओर नदियों, झीलों–तालाबों के लिए औद्योगिक कचरा एवं शहरों की "अति पिवाई" भी पेयजल के लिए घातक साबित हुई है। नदियों के जल, शहरों की अति पिवाई के साथ कूड़ा–कचरा तथा शहरों की गन्दगी डालने से भी प्रदूषित होता जाता है। इन सब कारणों से कुएं, जलाशय, तालाब और पानी के अन्य अधिसंख्य श्रोत सूख गये हैं और लाखों मृतप्रायः होकर अंतिम सांसें गिन रहे हैं।

पेयजल की दुर्दशा और उससे मानव जीवन तथा प्राणीमात्र के जीवनों पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को देखने हेतु हमें पीछे लौटकर देखना होगा। 1980-84 के दरम्यान तमिलनाडु के अर्काट जिले के लोगों को शुद्ध पेयजल हेतु आन्दोलन का सहारा लेना पड़ा था। अर्काट जिले में पेयजल के प्रदूषण का प्रमुख कारण वाणियंवाड़ी, आम्बूर तथा रानीपेट शहरों के 250 से अधिक चमड़ा शोधन कारखाने जिम्मेदार ठहराये गये, जो अपने अवशेष, गन्दगी को बिना शोधन किये, निष्कंटक रूप से बहाते चले आ रहे थे, जिस कारण इन क्षेत्रों में शुद्ध पेयजल का भीषण अकाल पड़ गया था, पैदावार अस्सी प्रतिशत तक घट गयी थी। सांस और चर्म रोगों के कारण अधिसंख्य जनता बुरी तरह आप्लावित थी, चमड़ा शोधन से निकले अवशेष जहरों के कारण, पानी, मछली,

जलचरों से विहीन हो गयी थी। अधिसंख्य इलाकों में हालत इतने बदतर हो गये थे, कि उन बदबूदार और सड़ान्ध वाले इलाकों में मेवेशी तक चरने नहीं जाते थे, नभचरों एव वनचरों ने भी अपने आवास बदल डाले थे।

हालात इतने अधिक बिगड़ गये थे, कि मद्रास के किंग्स इन्सीट्यूड ने आम्बूर के पानी को पीने के लिए पूर्ण अयोग्य घोषित कर दिया था। इसका सबसे बड़ा कारण था, कि किसी भी चमड़ा शोधन कारखाने ने जहरीले कचरे को साफ करने वाले संयन्त्र लगाने की गुस्तागी नहीं की थी। आई०आई०टी० मद्रास के श्री शास्त्री ने वाणियंवाड़ी में अध्ययन के उपरान्त अवगत कराया, कि इस क्षेत्र में स्थापित 41 चमड़ा शोधन कारखानों से प्रतिदिन 1100 घनमीटर से अधिक जहरीला पानी निकलता है। जिन कारखानों ने गन्दा पानी जमा करने हेतु हौज बनाये थे, वे उत्पादन की क्षमता में मात्र दिखावा भर थे, जिस कारण हौजों से ओवर–फ्लो (अधिक भराई) से जहरीला पानी खेतों, तालाबों और नदियों में जाकर बुरी तरह भूमि और जल को प्रदूषित करता चला आ रहा था।

हालात इससे भी अधिक बिगड़ चुके थे, चमड़ा शोधन कारखानों का गन्दा पानी पालार नदी में घुसकर नदी को ही जहरीला बना चुका था। नदी का यह जहरीला पानी रिसकर क्षेत्र के कुओं व अन्य पेयजल श्रोतों में रिसकर सम्पूर्ण पेयजल श्रोतों को पूरी तरह पीने के अयोग्य बना चुका था। मात्र आम्बूर में ही 3000 से अधिक नलों में, इस जहरीले पानी ने अपना कब्जा जमाकर लोगों को सैंकड़ों बीमारियों की चपेट में ले लिया।

मृदा विशेषज्ञों ने, वाणियंवाड़ी, आम्बूर, वेल्लोर, अर्काट, वालाजा, रानीपेट, विशारम, और तिमिर शहर की 10,000 एकड़ से अधिक खेतीयुक्त जमीन को 1979 में गन्दगी के कारण पूर्ण खराब तथा 30,000 एकड़ जमीन को खेती के लिए अयोग्य होती भूमि के रूप में घोषित कर दिया था।

बिहार के भागलपुर से बरौनी तक गंगा, उर्वरक कारखानों ताप–बिजलीघरों, तेलशोधक कारखानों, शराब की भट्टी, बाटा कम्पनी के कारखानों आदि के जहरीली गन्दगी से बुरी तरह

प्रदूषित पायी गयी। जिनसे जलचरों का भारी विनाश हुआ। विषाक्त एवं जहरीले तत्वों से मिश्रित मछली का मांस खाने तथा जल के उपयोग से इस क्षेत्र में अनेक तरह की व्याधियों से लोग लिप्त पाये गये। जबकि प्रदूषण का आलम पहले से ही इतना विकट था, कि मुंगेर के निकट 1968 में गंगा नदी में ही आग लग गयी थी।

इसी तरह कर्नाटक के कारवार शहर के पास कास्टिक सोडा फैक्टरी के प्रारम्भिक चरण, जून 1975 में फैक्ट्री के प्रदूषित जल को पास के नाले में विसर्जन के कारण, फैक्ट्री चालू होने के मात्र तीन दिन बाद, आधे टन से अधिक मछलियां मरकर समुद्र में पहुंची थी और 17,000 रांपनी मछुआरों को रोजी रोटी के लाले पड़ गये थे।

तुंगभंदा नदी जो कभी स्वच्छ एवं शुद्ध पानी की वरदायिनी मानी जाती थी। कर्नाटक के धारवाड़ जिले के हरिहर शहर में लगे 'हरिहर पौली फाइबर फैक्टरी'' के कारण 80 के दशक में बुरी तरह प्रदूषित पायी गयी। इस फैक्ट्री तथा 'ग्वालियर रेयान एण्ड सिल्क मैनुफैक्चरिंग कम्पनी के कारण प्रतिदिन 45,000 से अधिक घनमीटर जहरीला पानी, उक्त तुंगभद्रा नदी में गिराया जा रहा था। कारखाने वालों का कहना था, कि उन्होंने रिफ्लैक्टर लगाये हैं तथा गन्दा पानी छोड़ने से पूर्व उसे साफ किया जाता है। पर अध्ययन रिपोर्ट कुछ और ही बातें कहती है—उक्त जहरीले पानी से नदी का पानी भूरा, लाल, मटमटैला, गन्दला एवं काला हो गया है। पानी के पास मुंह ले जाने से ही वह बदबू मारने लगता है।

उक्त नदी के किनारे बसे अधिकांश लोगों को, पानी का उपयोग करने के कारण सिर—पीठ, पैर तथा जोड़ों के दर्द से पीड़ित पाया गया, चमड़ी में जलन, शरीर में फुंन्सियां, गैस, कब्ज, अपच, भूख न लगना, पेचिश की शिकायत तो अमूमन सारे लोगों में पायी गयी। अनेक लोगों की आंतों एवं अमाशय में एक अजीब किस्म की नयी बीमारी भी पायी गयी। अधिसंख्य लोगों की आंखें लाल अथवा पीली पायी गयी। मवेशी वलगम थूकने के बाद ज्वर से पीड़ित होकर अचानक मृत्यु के मुख में चले जाते। कई

मवेशियों को नदी का जल पीते ही तत्काल मरते देखा गया, जो मवेशी बचे रह जाते, उनकी दूध देने की क्षमता बहुत ही कम रह गयी। खेती की पैदावार घटकर 90 प्रतिशत तक गिर गयी। क्षेत्र में स्थित वनस्पतियाँ, पेड़ों के पत्ते पीले अथवा मरियल पाये गये और धीरे धीरे मरते चले आये। मछलियाँ तथा अन्य जलचरों को मरते प्रायः ही देखा जा सकता है। 1984 तथा इससे पूर्व भी एक बार कई टन मरी हुई मछलियाँ तैरती पायी गयीं। कर्नाटक विश्वविद्यालय धारवाड़ के श्री प्रभु दंडायती ने नदी के पानी के नमूने का परीक्षण कर बताया, कि नदी में उक्त फैक्टिरियों के अवशेष मिलने के बाद पानी में वी०ओ०डी० तथा सी०ओ०डी० की मात्रा, क्रमश 300 तथा 1200 से भी अधिक बढ़ी हुई पायी गयी।

देश में पेयजल संकट तो आजादी से पूर्व ही आ चुका था, गर्मी की तो बात छोड़िएः जाड़ों में दिसम्बर 1987 में राजस्थान के शहर जोधपुर में रेलगाड़ियों से पानी पहुंचाया गया था। अस्सी के दशक के अन्त तक देश में उपलब्ध कुल पानी का 80 प्रतिशत से अधिक भाग प्रदूषित हो चुका था, जिस पानी के उपयोग के कारण होने वाली बीमारियों के कारण प्रतिवर्ष 8,40,00000 (आठ करोड़ 40 लाख) काम दिवस बेकार हो रहे थे। इसी तरह दिल्ली से पूर्व यमुना नदी के पानी में प्रति 100 मिलीलीटर 7500 केलिफार्म पाये जाते थे, उसमें दिल्ली की गन्दगी मिलने के उपरान्त प्रति 100 मिलीलीटर 2 करोड़ 40 लाख (2,40,00,000) से अधिक केलिफार्म पाये गये। यह स्थिति डरावनी ही नहीं बल्कि अत्यधिक भयानक है। इसी प्रकार 80 के दशक से पूर्व कालू नदी के किनारे बसे गाँव, अम्बीवाले का अध्ययन भी डरावना था। इस गांव पर पारे के प्रदूषित अवशेषों का आतंक था। नदी में मछलियां और जलचर समाप्त हो गये थे। जलचर समाप्त होने से पानी की स्वच्छता की प्रक्रिया गड़बड़ा गयी थी और पानी सड़कर दुर्गन्ध छोड़ता था। आसपास की वनस्पतियाँ, पेड़–पौधे मुरझाकर मरते चले जा रहे थे। पशुधन पूरी तरह विषाक्त हो चुका था। दूध पीना तथा मांस प्रयोग करना, स्वास्थ पर कुठाराघात था। गांव के अधिसंख्य लोग तरह–तरह की बीमारी से ग्रसित

पाये गये तथा अनेकों लोगों को एक नये किस्म का लकवा पड़ गया था।

भारत वर्ष में पेयजल का सद्पयोग कर उसे प्रदूषण से मुक्त कर, समुचित विदोहन की प्रक्रिया अपनायी जाती, तो इतना तो निश्चित था, कि शुद्ध पेयजल के स्तर पर भी भारतवर्ष पेयजल धनी देश माना गया होता, क्योंकि इस देश के मुकुट के रूप में विद्यमान हिमालय, जल श्रोत का एक अद्भुत वरदान है, जिससे गंगा–यमुना–ब्रह्मपुत्र सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियां, घाघरा, गंडक, गोमती, कोसी, सोन आदि अनेकों नदियां निकलकर देश को स्वच्छ एवं साफ सुथरा पेयजल देती हैं। इसके सिवाय वरदानस्वरूप प्राप्त, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा कावेरी, लूणी, खान, क्षिप्रा आदि नदियां अपने पेयजल का जाल सा बिछाये हुए हैं। लेकिन देश की कुव्यवस्था, भ्रष्टाचार, भौतिकवादिता आदि के चलते आज कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा पूर्व में आसाम से लेकर पश्चिम में पाक सीमा तक, सम्पूर्ण नदियां प्रदूषण के कारण अपनी स्वच्छता, निर्मलता खो चुकी हैं।

नदियों के पेयजल को बर्बाद करने में जितना हाथ उद्योगों का है, उससे तीन–चार गुना अधिक दोषी हम सारे लोग हैं, क्योंकि उद्योग कुल जल प्रदूषण का एक तिहाई से कम हिस्सा ही प्रदूषित करते हैं, बाकी दो तिहाई से अधिक भाग शहरों से बहने वाली गन्दगी प्रदूषित करती है।

जल प्रदूषण भारत वर्ष के लिए एक भयानक खतरे की घंटी है। एक अनुमान के अनुसार देश में होने वाली तीन–चौथाई बीमारियां अशुद्ध पेयजल के कारण होती हैं। अशुद्ध एवं प्रदूषित पेयजल के कारण, पीलिया, हैजा, अतिसार, पेचिश, आन्त्रशोध, टाइफाइड आदि बीमारियां तो इस देश की विशुद्ध धरोहर ही बन चुकी हैं।

आंकड़े बताते हैं, कि जल प्रदूषण के कारण, अकेले बम्बई शहर में 1978 में 2000 लोग पीलिया के शिकार हुए थे तथा इससे पूर्व 1955-56 में यमुना नदी में भारी प्रदूषण के कारण दिल्ली के 40 हजार लोगों को पीलिया हुआ था और हजारों लोग मरे थे।

पानी एक सार्वभौम घुलनशील पदार्थ है, जिस कारण यह प्रदूषित जल्दी होता है। जल और आक्सीजन जीवन की आधारभूत आवश्यकताएं है। भोजन के बिना इन्सान लम्बे समय तक जीवित रह सकता है, पर जल तथा आक्सीजन के बिना नहीं। नदियों के जल में कहीं कहीं तो शुद्धता बनी हुई है, उसका कारण इन्सान नहीं बल्कि खुद प्रकृति है, क्योंकि सूर्य जल का शोषण कर भाप बनाता है, जो बादलों के रूप में बरस कर पुनः धरती पर लौट आता है। परन्तु मानव ने वायु को भी इतना अधिक प्रदूषित कर दिया है, कि अब वर्षा से भी शुद्ध जल की आशा करना दिवास्वप्न देखने के समान है, क्योंकि आज वर्षा के जल के साथ, तेजाबी वर्षा होना एक आम बात हो गयी है। वर्षा के साथ धूल के कण, घातक अणु, विषाक्त, उड़ते अवयव आदि वर्षा के जमीन में पहुंचने से पूर्व, उसे जहरीला और स्वास्थ के लिए हानिकारक बना देते हैं।

जलप्रदूषण की चर्चा, वायुजीवी जन्तु तथा एक कोशीय जीव की चर्चा के बिना अधूरी रह जाती है। वायुजीवी जीव दो तरह के होते हैं, पहला वह जो आक्सीजन के बिना जी नहीं पाते हैं और पानी की सतह के आसपास रहते हैं, दूसरे किस्म के वायुजीवी, वे जन्तु हैं जो आक्सीजन से दूर भागते हैं और पानी के तल तथा गहराईयों में रहते हैं।

नदी अथवा जल में फेंके कचरे पर, ये वायुजीवी जीव हमला बोलते हैं तथा उसे खाना प्रारम्भ कर देते हैं। कचरे का इनके द्वारा भोजन करने की प्रक्रिया के कारण, मिश्रित सेन्द्रिय पदार्थ ऐसे निरीन्द्रीय और खनिज पदार्थों में बदल जाता है, जो फिर से शुद्ध नहीं हो पाता है, जिससे पानी प्रदूषित हो जाता है, क्योंकि कूड़ा–कचरा के पानी में गिरते ही वायुजीवी द्विगुणित हो जाते हैं। अपने भोजन के दौरान ये पानी में विद्यमान आक्सीजन का प्रयोग कर लेते हैं, कुछ मामलों में इनके द्वारा बनाये गये निरीन्द्रीय और खनिज द्रव्यों को पानी में रहने वाली काई चूस लेती है और उसे उपयोगी सेन्द्रिय द्रव में परिवर्तित कर लेती है। इस क्रिया के फलस्वरूप काई फोटोसिन्थेसिस प्रक्रिया द्वारा पुनः पानी में आक्सीजन घोल देती है।

पानी में स्वास्थ की दृष्टि से अत्यन्त सहायक एवं लाभदायक प्रोटोजोवा (एक कोशीय जीव) पाये जाते हैं, जो पानी में आ गये कचरे में रहने वाले बीमारियों के बैक्ट्रिरियाजों को खाना प्रारम्भ कर देते हैं, ये प्रोटोजोवा अपना भोजन पानी में उपलब्ध आक्सीजन के सहारे करते हैं। लेकिन स्थिति, तब विस्फोटक हो जाती है जब कचरे की मात्रा तथा उसमें विद्यमान रहने वाले बीमारियों के जीवाणुओं की मात्रा बढ़ जाती है। उक्त कचरे और विषाणुओं को खाने की प्रक्रिया में, वायुजीवी जन्तु तथा प्रोटोजोवा अधिक मात्रा में आक्सीजन का प्रयोग करने लगते हैं। परन्तु पानी की अथवा नदियों की आक्सीजन संग्रह की मात्रा काफी कम होती है। अतः आक्सीजन की खपत उसके संग्रहण शक्ति से कई गुणा अधिक बढ़ जाती है। जिसके परिणामस्वरूप वायुजीवी जीव तथा प्रोटोजोवा अकाल मौत मरने लगते हैं। पानी के सतह पर आक्सीजन की समाप्ति की स्थिति में आक्सीजन से दूर भागने वाले, वायुजीवी जीव, पानी की सतह तक ऊपर चले आते हैं और हाइड्रोजन के सहारे कूड़ा–कचरा खाना प्रारम्भ कर देते हैं। हाइड्रोजन, कचरे में उपलब्ध गन्धक के साथ मिलकर अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त हाइड्रोजन-सल्फाइड-गैस उत्पन्न करता है। इस स्थिति के बाद सतही पानी गन्दा होने लगता है, जिसके परिणामस्वरूप सूर्य की रोशनी पानी के सतह से ही ऊपर लौट आने लगती है। पानी में सूर्य की किरणा के न पहुंच पाने के कारण काई जमने लगती है और धीरे–धीरे जलचर तथा मछलियां मरने लग जाती हैं। इस स्थिति में पहुंचने के बाद पानी की ही मृत्यु हो जाती है, बचा हुआ गन्दला जल, निष्चेष्ट, प्राणहीन होकर बदबू मारने लगता है जो प्रकृति पर भार एवं अभिशाप बन जाता है।

नदी जल की गुणवत्ता

(अमरीकी मानक)

1.	एल्कल वेजीन सल्फोनेट्स	- 0.5 मिलीग्राम प्रति लीटर
2.	आर्सेनिक	- 0.1 मिलीग्राम प्रति लीटर
3.	कापर	- 1.00 मिलीग्राम प्रति लीटर
4.	क्लोराइड	- 2.50 मिलीग्राम प्रति लीटर

5.	साइनाइड	- 0.01 मिलीग्राम प्रति लीटर
6.	मैगनीज	- 0.05 मिलीग्राम प्रति लीटर
7.	नाइट्रेट	- 45.00 मिलीग्राम प्रति लीटर
8.	फिनाल्स	- 0.001 मिलीग्राम प्रति लीटर
9.	सल्फेट्स	- 250.0 मिलीग्राम प्रति लीटर
10.	टोटल डिजाल्वड रेसिड्यू	- 500.00 मिलीग्राम प्रति लीटर
11.	वेरियम	- 0.0 मिलीग्राम प्रति लीटर
12.	क्रेडिमियम	- 0.01 मिलीग्राम प्रति लीटर
13.	क्रोमियम	- 0.05 मिलीग्राम प्रति लीटर
14.	लेड	- 0.05 मिलीग्राम प्रति लीटर
15.	सेलेनियम	- 0.01 मिलीग्राम प्रति लीटर
	(भारतीय मानक)	
1.	ई. कोलाई (पीपीएम प्रति 100 सीसी)	- पांच प्रतिशत नमूनों में पांच हजार से अधिक न हो।
2.	पी.एच.	- 6.0 से 9.0
3.	क्लोराइड (मिलीग्राम प्रतिलीटर)	- 600.00
4.	घुली आक्सीजन	- 40.00 (अधिक हो तो अच्छा)
5.	बायो केमिकल (आक्सीजन डिमाण्ड)	- 3.0 मि.ग्रा. प्रति ली०
6.	तैलीय पदार्थ (मिग्रा प्रति ली०)	- 1.0 मि.ग्रा. प्रति ली०
7.	फिनालिक पदार्थ	- 0.001 मि.ग्रा. प्रति लीटर
8.	साइनाइड	- 0.01 मि.ग्रा. प्रति लीटर
9.	सेलेनियम	- 0.05 मि.ग्रा. प्रति लीटर
10.	लेड	- 0.1 मि.ग्रा. प्रति लीटर
11.	क्रोमियम	- 0.05 मि.ग्रा. प्रति लीटर
12.	आर्सेनिक	- 0.2 मि.ग्रा. प्रति लीटर

उक्त प्राणहीन जल किसी काम का नहीं होता है, आजकल इस जल तथा गन्दी नालियों के पानी का प्रयोग, सिंचाई के कार्य में लिया जाने लगा है, जो मानव स्वास्थ के लिए हानिकारक ही नहीं, बल्कि अभिशाप भी है, क्योंकि इस प्रक्रिया में अन्न उपज चक्रों में धातुओं एचं विषैले तत्वओं के अंश चले जाते है, जो खाद्य रूप में, मानव शरीर में पहुँचकर अनेकों किस्म की बीमारियाँ पैदा करते हैं।

नदी में फैंके जाने वाले कचरे (टोटल सालिड्स) में से

घुलनशील पदार्थों को, डिजाल्वड सालिड्स और अघुलनशील पदार्थों को, सस्पेन्डेड सालिड तथा ठोस पदार्थों के साथ आने वाले वैक्ट्रिरियाजों को, कोलिफार्म तथा ईकोलि (फेकल कोलिफार्म) कहा जाता है।

पानी के प्रदूषण की जाँच के लिए भारीपन, आक्सीजनविहीनता, उष्णता, गन्दलापन कंडक्टिविटी (संवेदन शीलता) धातु तत्वों की मात्रा, नाइट्रोजन क्लोराइड, नाइट्रेड, पी०एच०, फ्री अमोनिया आदि की जाँच की जाती हैं।

हमारे देश में पेयजल प्रदूषण इतना अधिक बढ़ गया है, कि अनेकों स्थानों पर गंगा–यमुना, चम्बल, सोन, दामोदर, हुगली, गोदावरी, ताप्ती, भद्रा, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा, चालियार, कालू आदि नदियों का पानी, अधिसंख्य स्थानों पर पीना हो दूर, नहाने योग्य भी नहीं बचा है।

जल प्रदूषण का प्रकोप नदी, नाले, तालाब, झील, कुओं तथा भूमिगत जल तक ही सीमित नहीं है। इस प्रदूषण का कहर समुद्री जीवों, मछलियों तथा समुद्र के निचले तह में रहने वाले जीव जन्तुओं पर भी हो रहा है, वे लगातार मरते और कम होते जा रहे हैं, मछलियों के मरने का तात्पर्य है, कि प्रोटीन के एक सबसे महत्वपूर्ण श्रोत का सफाया हो जाना। इसके सिवाय इसका व्यापक प्रभाव लाखों मछुआरों पर भी पड़ता है। 1990 के दशक तक तो यमुना नदी की स्थिति इतनी अधिक खराब हो गयी, कि दिल्ली से लेकर इलाहाबाद तक यमुना का जल पूरी तरह प्रदूषित हो गया।

चम्बल नदी का भी हाल बेहाल है। परमाणु बिजलीघर, ताप बिजलीघर, अन्य कल–कारखाने, रसायनिक खाद के कारखाने आदि के कारण चम्बल नदी के किनारे बसे कोटा शहर के आसपास चम्बल नदी, कचरा, गन्दा पानी, यूरिया, अमोनिया, क्लोरिन, शीशा, पारस व अन्य धातु तत्वों के कारण पूरी तरह प्रदूषित हो चुकी है, जलचर और मछलियों की बात तो दूर है, इस पानी को पीने से अनेकों मवेशी तक अकाल मृत्यु मुख में जा चुके हैं।

लखनऊ शहर की गन्दगी व कचरे के कारण गोमती नदी

लखनऊ से आगे 100 किमी० तक पूरी तरह प्रदूषित पायी गयी। उ०प्र० के मिर्जापुर के पास नदी प्रदूषण के कारण सैकड़ों बार मछलियां मर चुकी हैं। डालिमानगर (सोन नदी का तट) दामोदर नदी के तटों वोरारो–सिन्दरी आदि, दामोदर घाटी क्षेत्र आसनसोल से दुर्गापुर, कलकत्ता के गंगा और हुगली, गोदावरी का राजमहेन्द्री क्षेत्र, तुंगभ्रदा के किनारे हरिहर क्षेत्र, नर्मदा के किनारे बसा होशंगाबाद, पेरियार नदी के तट पर बसे मद्रास, चालियार नदी के तट पर बसा मावूर, बम्बई की कालू नदी, इन्दौर के निकट खान नदी, आदि नदियों में निकट बसे शहरों के कचरों से लगातार मछलियां व अन्य जलचरों की मरने की घटनाएं प्रकाश में आयी हैं।

जल प्रदूषण, सैंकड़ों जानलेवा व्याधियों का जन्मदाता है, जल प्रदूषण से होने वाली सबसे खतरनाक बीमारी का नाम मिनामाता है। मिनामाता रोग से पागलपन, देखने व बोलने की शक्ति का समाप्त हो जाना, लकवा हाथ–पांव टेढ़ा हो जाना, उद्वेग को रोक न पाना, केन्द्रीय नाड़ी संस्थान का व्याधिग्रस्त हो जाना तथा मांसपेशियां शिथिल एवं जर्जर होकर अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाना आदि है। यह बीमारी जल के साथ पारे, के प्रदूषण से होती है।

सन् 1950 के दशक में पारे के कारखाने के कचरे से प्रदूषित जल की मछलियां खाने से जापानी गांव के लोगों में पारे का विष फैल गया था। बम्बई शहर के कालू नदी तथा उसके आसपास पैदा होने वाली मछलियों में पारे के विष के पर्याप्त अंश पाये गये, जो लोग जाने अनजाने इन मछलियों का मांस भक्षण करते हैं, उनमें मिनामाता के लक्षण उजागर होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

कालू नदी के सन्दर्भ में, बम्बई की इन्सिट्यूड आफ साइन्स ने अनेक अनुसन्धान किये, जिसके अत्यन्त डरावने परिणाम निकले, कालू बम्बई के पश्चिमी घाट से निकलने वाली एक छोटी सी नदी है। इसमें डेढ़ सौ से अधिक अंवरनाथ, उल्लासनगर और कल्याण क्षेत्र के औद्योगिक कारखानों का गन्दा पानी एवं कचरा मिलता है।

आम्बीवली के पास नदी में गिरने वाली औद्योगिक गन्दगी में, ताँबा, रांगा, पारा, शीशा, क्लोराइड, रंग, आर्गेनिक एसिड पाये गये, जिनके कारण, पानी एसिड व खार के कारण अपना रंग ही बदल चुकी है। पानी में खार, साद के साथ साथ भारी धातुओं की मात्रा भी अत्यधिक है। कहीं कहीं पर तो पारे और शीशे की मात्रा अनुमोदित प्रमाण से काफी अधिक पायी गयी। ये तत्व पानी में घुलते नहीं बल्कि डूबकर नीचे बैठ जाते हैं।

नदी के किनारे रहने वाले कई बैक्ट्रियाज अघुलनशील पारे को मिथेल में बदल देते हैं। मिथेल एक अत्यधिक भयानक विष है। जो वनस्पतियों, जलचरों, मछलियों, मवेशियों के आहार–चक्र में मिल जाता है। उथले पानी में उगी घास के चरने के कारण भी यह मवेशियों के आहार चक्र में सम्मिलित हो जाता है।

आम्बावाली तथा उसके आस–पास पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होने वाले ''पाईक्रियस'' पौधे तथा अन्य चारे की वनस्पतियों में भारी धातु तत्वों का अत्यधिक जमाव पाया गया। प्राईक्रियस के पौधे के मूल डंठल में 619 से 53.3 पी०पी०एम० तक तथा पत्तों में 3 से 110 पी०पी०एम० पारा पाया गया।

उक्त पौधे का चारा खाने वाले दुधारू मवेशियों के दूध में 5 पी०पी०एम० तक पारा पाया गया, इस आधार पर रोजाना एक लीटर दूध पीने वाले बच्चे के पेट में सप्ताह भर में ही 35 पी०पी०एम० से अधिक पारा पहुंच जाता है। कुछ ही माहों में यह पारा खतरनाक स्तर 0.3 मिलीग्राम तक पहुंच जाता है। इसी तरह मछलियों में भी प्रतिग्राम हड्डियों व पेशियों में 500 नानोग्राम से अधिक मात्रा में पारे का जमाव पाया गया।

विलक्षण टेड़ापन, शारीरिक व अन्य विकृत्तियां, दुर्बलता, बहरा हो जाना, नजर का क्षीण हो जाना, त्वचा की संवेदनशीलता समाप्त हो जाना अथवा सुन्न हो जाना, मस्तिष्क की विकृतता तथा पागलपन तथा खतरनाक लकवा पड़ जाना पारे के विष के फैलाव के कारण होता है।

गांधी शान्ति प्रतिष्ठान के जोधपुर पर्यावरण कक्ष ने अपने एक सर्वेक्षण में रंगाई–छपाई के उद्योग से होने वाले जल प्रदूषण के अध्ययन में पाया, कि इससे जोधपुर, पाली और बलोत्रा शहरों

में लोगों में चर्म, श्वास व नेत्र रोगों की बहुतायत पायी गयी तथा इलाके में तपेदिक, नपुंसकता, असमय गर्भपात, एलर्जी तथा अन्य नये प्रकार के चर्मरोगों के लक्षण भी पर्याप्त मात्रा में पाये गये।

पर्यावरण कक्ष ने अपनी रिपोर्ट में बताया, कि क्षेत्र की लगभग 1500 छोटी बड़ी रंगाई–छपाई की औद्योगिक ईकाइयां प्रतिदिन एक करोड़ पचास लाख लीटर से अधिक गन्दे पानी को नदियों में छोड़ रही हैं, इससे जहां बहता पेयजल बुरी तरह प्रदूषित हो चुका है, वहीं दूसरी ओर भूमि तथा भूमिगत जल पर भी इसका खतरनाक असर पड़ा है।

सर्वे के अनुसार क्षेत्र की 10 हजार हेक्टेअर से अधिक उपजाऊ खेत, इस जहरीले रंगीन पानी से बर्बाद होकर बंजरपन व रेगिस्तान को आगे बढ़ने का लगातार न्योता दे रहे हैं।

इस क्षेत्र में रेतीली भूमि होने के कारण पर्याप्त मात्रा में जहरीला रंगीन पानी रिसकर भूमिगत जल, कुओं, तालाबों, बाबड़ियों, हैण्डपम्पों के पानी को भी खतरनाक ढंग से प्रदूषित कर चुका है। कुओं तथा हैण्डपम्पों से रंगीन पानी आना अब साधारण सी बात बन चुकी है। क्षेत्र की जनता, मवेशियों, जलचरों के अलावा एक लाख से अधिक मजदूर, जो इन औद्योगिक ईकाइयों में कार्य करते हैं, इस प्रदूषित जल के कारण अनेकों घातक बीमारियों की चपेट में आ चुके हैं या फिर आने की तैयारी कर रहे हैं।

जोधपुर विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्र एवं प्राणिशास्त्र के दल ने भी अपने अध्ययन में बताया, कि इन रंगों में कैन्सर को जन्म देने वाले वैंजाडाइन, 3-3 डी क्लरोवैन्ज डाइन तथा वीटा नैपथलामिन आदि के अलावा, क्लोराइड, फ्लोराइड, सीसा, तांबा, लोहा आदि भी सुरक्षित मात्रा से कहीं अधिक मात्रा में पाया। इस प्रदूषित पानी को जहां बेरोक–टोक प्रयोग किया जा रहा है वहीं दूसरी ओर उक्त अध्ययन ने इस पानी को सिंचाई के लिए भी अनपयुक्त करार दिया है।

जल प्रदूषण से मिनामाता जैसी अनेकों घातक एवं कम घातक बीमारियां उत्पन्न होती रहती हैं। जल में आर्सेनिक की मात्रा बढ़ने से, आमाशय व आंतों में घाव, गुर्दे व लीवर की बीमारी

व खराबी तथा फेफड़ों में कैन्सर होता है। वेरियम के प्रदूषण से दस्त लगना, पेट खराब रहना, तन्तुवाहिनी, मांसपेशियों का लकवा, पेट तथा आंतों में दर्द का रहना तथा उल्टी आना आदि शिकायतें रहती हैं।

प्रदूषित जल में कापर की अधिक मात्रा से बुखार, यूरेनिया, बेहोशी, अत्यधिक मानसिक थकान के लक्षण रोगी में पाये जाते हैं, इसी तरह पारा प्रदूषित जल से, सीने का दर्द, सिरदर्द, अतिसार, पेटदर्द तथा शरीर में ऐंठन के लक्षण उत्पन्न होते हैं। क्रोमियम से केन्द्रीय तन्त्रिका सम्बन्धी बीमारियां, कैन्सर, आमाशय व आंतों में घाव, नेफ्राइटिस आदि व्याधियों के लक्षण प्रकट होते हैं।

सेलेनियम प्रदूषित जल–उल्टी, दन्तछिद्र, बुखार, घबराहट, रक्तचाप में गिरावट, जिगर, गुर्दा, तिल्ली में निरन्तर क्षति का कारण बनता है, इसी तरह कैडमियम से मानसिक तनाव, शारीरिक वृद्धि का रूकना, गुर्दो की खराबी व क्षति, वृषण का छोटा होना, ट्यूमर का बनना, जैसी घातक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। कोबाल्ड प्रदूषित जल से, फेफड़ों में जलन, निम्न रक्त चाप तथा हड्डियों की कमजोरी जैसे रोग उत्पन्न होते हैं। जिंक भी गुर्दे में खराबी तथा शरीर में अकड़न के लिए जिम्मेदार रहता है।

मल प्रदूषित जल से अतिसार (अमीबायोसिस) हैजा, ई० कोलाई, डायरिया, पेचिश, एंटटिक ज्वर, टाइफाइड, पोलियो, हेपेटाइटिस, लेप्टोपिरोसिस, एस्कैरिस जैसी घातक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। इसी तरह प्रदूषित प्रक्षालित जल से, चर्म एवं चक्षु संक्रमण, संक्रामक-चक्षु-रोग, चीलर एवं जूँ से सम्बन्धित बार–बार आने वाला बुखार आदि हैं।

मलेरिया, फाइलेरिया, डेंगू नारु पीत ज्वर आदि कई घातक बीमारियाँ, जल में अंडे देने वाले कीटों से होने वाली जानलेवा बीमारियां हैं। इसी तरह जल के रोगवाहक कीटों से भी स्लीपिंग सिकनेस जैसी बीमारियां होती हैं। जबकि चर्म भेदक, सिस्टोसोमाइसिस, गीनिया वर्म, विभिन्न प्रकार के कृमि रोग आदि भी जल आधारित रोग हैं।

जल प्रदूषण अथवा दूषित पेयजल प्रयोग करने से होने वाली

अन्य घातक बीमारियों में पीलिया, आन्त्रशोध तथा भयानक संक्रामक बीमारियां भी हैं, जो बार–बार महामारियों की तरह फैल जाती हैं।

देश की अधिसंख्य नदियाँ, झील, तालाब, पोखर, कुएं, नौले आदि भयंकर प्रदूषण की चपेट में हैं, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों के हालात और भी भयावह एवं डरावने हैं। भारत के कुल पांच लाख 76 हजार गांवों में से तीन लाख से अधिक गांवों में, पीने का पानी इतना अधिक प्रदूषित हो चुका है, कि वह पीने के योग्य नहीं बचा है। यह स्तर बढ़ता ही चला जा रहा है।

मध्यप्रदेश में गर्मियो में पेयजल की त्राहि–त्राहि के कारण लोगों को हैण्डपम्पों का पानी प्रयोग करना पड़ता है, जिस कारण उस प्रदेश में अतिसार–पीलिया जैसे संक्रामक रोग, बारह महीने कभी भी जड़ से ही समाप्त नहीं होते। उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, जम्मू–कश्मीर में भी पेयजल समस्या आम प्रदेशों से अधिक भयानक स्थिति लिए हुए है।

गन्दा पेयजल प्रयोग करने से देश के भिन्न–भिन्न कोनों में प्रतिवर्ष संक्रामक बीमारियां अपना आतंक फैलाती चली आ रही हैं।

औद्योगिक उत्पादों के विषैले कार्बनिक रसायन, फिनोल, अमोनिया, विषैले धातु तत्व, क्लोरीन आदि से भी जल प्रदूषण का परिमाण बुरी तरह बिगड़ा है। अमोनिया द्रव्य, फिनोल व क्लोरीन आपस में रासायनिक संयोग करके, अत्यन्त घातक यौगिकों क्लोरेमीन, माक्लोफिनोल जैसे खतरनाक यौगिकों का निर्माण करते हैं, जो स्वास्थ के लिए अत्यधिक घातक एवं खतरनाक हैं।

रासायनिक विश्लेषण के आधार पर सागर जल नदियों के जल से भिन्न है। सागर जल 0.5 एम सोडियम क्लोराइड तथा 0.05 एम मैग्नेशियम सल्फेट का घोल है, अन्य सभी प्राकृतिक तत्व भी इसमें आंशिक रूप में पाये जाते हैं।

भूमिगत जल भी औद्योगिक कचरा, गन्दा पानी, गन्दी नालियों का पानी सोखने, रसायनिक खाद, सूक्ष्म जीवाणुओं, कीटनाशक दवाईयों, डी०डी०टी० आदि से भी बुरी तरह प्रदूषित होता चला

जा रहा है। जहां भूमिगत जल स्तर ऊँचा होता है वहाँ यह जल प्रदूषण की चपेट में भी जल्दी आ जाता है।

कुँओं में मैगनीज की मात्रा अधिक होने की स्थिति में आदमी लकवे का शिकार जल्दी हो जाता है। इसी तरह जल में फ्लोरीन नाइट्रेड तथा नाइट्राइड की मात्रा अधिक होने से भी लोगों के स्वास्थ पर अत्यन्त घातक असर पड़ता है।

कृषि में उर्वरकों के प्रयोग से भूमिगत जल में नाइट्रेड का प्रवेश काफी अधिक मात्रा में चलता जा रहा है। उद्योग धन्धों से निकले भारी धातुओं के अवयव, जहरीले रसायन, भी भूमिगत जल में मिलकर,तेजी से उसे जल के स्थान पर विष में परिवर्तित करते चले आ रहे हैं।

विश्व के करोड़ों लोग, नाइट्रेड तथा फ्लोराइड के घातक प्रभावों से बुरी तरह पीड़ित हैं। अपनी अत्यधिक क्रियाशीलता के कारण फ्लोरीन प्रकृति में मुक्त अवस्था के बजाय फ्लोराइड के रूप में पाया जाता है। पृथ्वी की सतह अथवा परत में पाया जाने वाला यह तत्व 17वां स्थान रखता है यह 0.32 प्रतिशत तक उपलब्ध है। यह एक अत्यन्त क्रियाशील तत्व है जो हड्डियों में सीधे प्रवेश कर सम्पूर्ण मानव के अस्थि–पचर तथा उसके विकास को बुरी तरह प्रभावित करता है, यद्यपि इसकी कम मात्रा दांतों के लिए उपयोगी है, परन्तु यह जिस तरह बहुतायत फैल रहा है, उस आधार पर इसकी जायज मात्रा की कल्पना करना बेमानी है। अधिक मात्रा में इसका सेवन फ्लोरोसिस या फ्लोराइड टाक्सीकोसिस रोगों का कारण है। 1990 के आसपास भारत वर्ष में तीन करोड़ से अधिक लोग उक्त बीमारियों से ग्रसित एवं पीड़ित थे। अकेले राजस्थान में चालीस लाख से अधिक लोग इस बीमारी के कारण विकलांग हो चुके थे।

फ्लोराइड की तरह नाइट्रोजन की भी अधिक मात्रा मानव स्वास्थ के लिए खतरनाक है। पेयजल में 45 पी०पी०एम० से अधिक नाइट्रेड की मात्रा खतरनाक रूप धारण कर लेती है, इससे छोटे–छोटे बच्चों में मेटहीमोग्लोवैनीमिया या साइनोसिस अथवा बच्चों वाला नीला रोग हो जाता है। बच्चों की त्वचा रंग बदल कर हल्के नीले रंग की हो जाती है।

नाइट्रेट सेकंडरी से एमीन करके नाइट्रोसामीन नामक अत्यन्त विषैले योगिकों का निर्माण करता है। यह कैन्सर रोग का एक खतरनाक जनक है, दूध देने वाले पशुओं में दुग्ध उत्पादन में भारी कमी, मवेशियों का गर्भ गिर जाना जैसे कारण यह यौगिक उत्पन्न करता है। भूमि में नाइट्रोजन अनेक श्रोतों से प्रवेश करता है। पौधों द्वारा अवशेष नाइट्रोजन पानी मिट्टी में घुलने के पश्चात, अवशोषित होकर, भूमिगत जल में मिल जाता है। सड़े गले पौधे, पत्तों, पशु व जीव अवशेष, नाइट्रेटयुक्त उर्वरक, मल आदि के द्वारा भी नाइट्रोजन भूमि में रिसकर भूमिगत जल को प्रदूषित करता है।

भारी धातु अवयव प्राणीमात्र अथवा मानव को ही प्रभावित नहीं करते बल्कि ये अवयव पेड़ पौधों एवं वनस्पतियों पर भी अपना घातक प्रभाव छोड़ते हैं।

मैंगनीज के प्रभाव से पेड़ों की पत्तियों में सफेद मृत धब्बे अथवा क्लोरोफिन रहित धब्बे दिखाई देते हैं अथवा कहीं कहीं पर उनमें असामान्य रूप से वृद्धि भी पायी जाती है। कोबाल्ट से भी पत्तियों में मृत धब्बे पाये जाते हैं। क्रोडियम से हरी नसों के साथ–साथ पीली पत्तियाँ होना तथा निचली पत्तियों पर शुष्क मृत धब्बे पाये जाते हैं।

आयरन से पेड़–पौधे की वृद्धि रूकना, जड़ों में दुर्बलता एवं रेशेदार जड़ों की बहुतायत जैसे लक्षण प्रकट होते हैं। अल्युमिनियम से पौधे की पत्तियों में चित्तीदार धब्बे प्रकट होते हैं। कैडमियम से पत्तियों की नशों के बीच, पीत श्वेत क्लोरोमिल रहित धब्बे पड़ते हैं जो आयु के साथ–साथ लाल और भूरे होते जाते हैं।

इसी तरह मालिब्डिनम से पेड़ पौधों की वृद्धि रूक जाती है तथा पत्तियों का रंग पीला एवं नारंगी हो जाता है, जिंक से हरी नसों से युक्त क्लोरोफिन रहित पत्तियां, सफेद–बौने होकर उनके सिरे मृत होते हैं तथा निकेल से पत्तियों पर सफेद मृत धब्बे अथवा वे क्लोरोफिन रहित बनते हैं, इससे उनमें असामान्य रूप से वृद्धि दिखाई देती है।

नलों से गुजरने वाला पानी समय बढ़ने के साथ–साथ उसके भीतरी भाग में जंग लग जाने से भी प्रदूषित होने लगता

है। इस पानी में धातु व जंग के तत्व काफी मात्रा में पाये जाते हैं।

इसी तरह शीशा मिश्रित धातु से निर्मित पाइपों व टोंटियों से गुजर कर आने वाले पानी में शीशे की मात्रा अधिक होती है। यह गर्भस्थ शिशु के विकास को बुरी तरह प्रभावित कर सकता है तथा वयस्क व्यक्ति इस पानी के प्रयोग से उच्च रक्तचाप के रोगी बन जाते हैं।

अमेरिका तथा अन्य कई यूरोपीय देशों में पानी के पाइपों एवं टूटियों को बनाने में प्रयुक्त होने वाले धातुओं में, सीसे की मिलावट पर प्रतिबन्ध लगा दिया है जिन देशों में इस तरह का प्रतिबन्ध नहीं है उन देशों के लोगों को चाहिए कि वे नल खोलने के बाद लगभग पांच मिनट तक पानी को बहने दें और उसके बाद ही पानी भरकर उपयोग में लायें। क्योंकि नल खुलने के प्रारम्भिक चरण में पानी में शीशे की मात्रा अधिक पायी जाती है। अतः प्रारम्भिक चरण में नल के पानी का प्रयोग करना रोग को आमन्त्रण देना है। यहां भी पाइपों-टोटियों में सीसे का प्रयोग रोका जाना चाहिए। आवश्यकता तो इस बात की है, कि पाइपों को धातुओं से ही न बनाया जाय अन्य विकल्प अपनाये जायं।
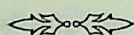
11

वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव

वायु के बिना मानव जीवन की कल्पना करना बेमानी है, जीवन के लिए यह एक अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्व है। पानी और भोजन के बिना व्यक्ति कई दिवसों तक जीवित रह सकता है, परन्तु वायु के बिना वह मुश्किल से कुछ ही मिनट तक जीवित बच सकता है।

हमारी पृथ्वी के चारों ओर वायुमंडल का एक आवरण विद्यमान है, अतः वायु को प्रकृति का एक अनुपम तोहफा कहा जा सकता है, पर प्रकृति की उस अनुपम भेंट को मानव द्वारा लगातार प्रदूषित किया जा रहा है।

औद्योगीकरण, शहरीकरण, मोटर–कार–वाहनों, घरों में जलने वाले ईंधनों, ताप बिजली घरों, कारखानों और फैक्ट्रियों की प्रदूषित पदार्थों को उगलती चिमनियों, युद्ध की विभीषकाओं, बारूदों आदि से मानव ने वायुमंडल को बुरी तरह प्रदूषित कर डाला है, जिससे अनेक किस्म की नयी–नयी समस्याएं पैदा हो गयी हैं।

वातावरण में बढ़ते कार्बनडाईआक्साइड से, दुनियां के मौसम में भयंकर परिवर्तन आने प्रारम्भ हो चुके हैं, जीवमात्र की रक्षा में सक्षम, सूर्य की अल्टावायोटिक किरणों को रोकने वाली छतरी ओजोन परत फटती चली जा रही है।

वायु प्रदूषण के कारण उसमे उपलब्ध जहरीली गैसों, अवयवों, धुँआ, धुँधलापन आदि से लोगों क़े स्वास्थ पर ही घातक असर नहीं पड़ रहा है, बल्कि फसलों वनस्पतियों, साग–सब्जियों,

इमारतों, पुरातन धरोहरों आदि पर भयंकर दुष्प्रभाव नजर आने लगे हैं।

भारतवर्ष के अनेकों शहरों में सल्फरडाईआक्साइड और पार्टिकुलेट मैटर की मात्रा, विश्व स्वास्थ संगठन द्वारा अनुमोदित सुरक्षित स्तर को पार कर बहुत आगे निकल चुकी है। बम्बई के चैम्बूर को जहां वायुप्रदूषण के कारण "गैस चैम्बर" के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा है वहीं दूसरी ओर कलकत्ता जैसे शहरों की कुल जनसंख्या के 60 प्रतिशत से अधिक जनता सांस की बीमारियों से पीड़ित हैं।

वायुप्रदूषण का आलम भारतवर्ष में इतना अधिक बढ़ गया है कि देश की लगभग नब्वे प्रतिशत जनता टी०वी० की बीमारी से आंशिक, मध्यम, साधारण तथा पूर्ण रूप से किसी न किसी रूप में ग्रसित हो चुकी है।

विश्व के औसत तापमान से 1 से 2 डिग्री सेन्टीग्रेड तक उष्णता की वृद्धि के कारण गरमी में ज्यादा गरमी और सूखा तथा बरसात में अधिक वर्षा से बाढ़ के लक्षण स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय के प्रो० डी०एन० राव ने अपने अनुसन्धानों के बाद अवगत कराया, कि उद्योगों से फैलने वाले द्रव्यों के कारण कृषि की पैदावार में 17 प्रतिशत से 30 प्रतिशत की कमी हो सकती है।

विश्व स्वास्थ संगठन ने वायु प्रदूषण को कुछ इस तरह परिभाषित किया है – **"वायुप्रदूषण एक ऐसी स्थिति है जिसमें बाह्य वातावरण में मनुष्य और उसके पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाले तत्व सघन रूप से एकत्रित हो जाते हैं।"**

अलग–अलग औद्योगिक ईकाइयां अलग–अलग गैसों व तत्वों को वातावरण में फैलाती हैं, कुछ गैसें समान भी होती हैं, रसायनिक खादों के कारखानों से निकलने वाले प्रमुख वायु प्रदूषक तत्वों में प्रमुखता फ्लोरीन गैस, यूरिया की धूल मिश्रकणीय द्रव्य/लेड गंधक अम्ल अथवा स्फुट अम्ल की ईकाइयों से सल्फर डाई आक्साइड, ट्राईआक्साइड तथा नाईट्रोजन गैसें निकलती हैं।

इसी तरह नाईट्रोजन आक्साइड आधारित संयंत्रों से अमोनिया, हाइड्रोकार्बन तथा भिन्न कणीय द्रव्य निकलते हैं। इनके वातावरण में फैलने से सांस में तकलीफ, नेत्रों में तीव्र जलन जैसी प्रारम्भिक तकलीफें होती हैं। गन्धक का धुँआ मूल रूप से दमघोंटू होता है।

खनिज ईंधन संचालित औद्योगिक ईकाइयों में से कार्बन डाई आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड, नाइट्रोजन जनित आक्साइड, सस्पैण्डेड पर्टिक्यूलेट मैटर, हाइड्रोकार्बन, मैटलिक ट्रैसेज या धातु तत्व आदि। इसी तरह ताप बिजलीघरों से प्रमुखतया, फ्लाई ऐश (राख) कालिख और सल्फर डाईआक्साइड आदि तत्व व अन्य गैसें बहुतायत मात्रा में पायी जाती हैं। फ्लाई ऐश सांस की बीमारियों के जनक के रूप में जाना जाता है तथा इससे तपेदिक जैसी घातक बीमारियाँ भी होती हैं।

सूती कपड़ों के औद्योगिक संस्थान वातावरण में धुँआ, रूई के रेशे, अन्य जलावन के अवशेष, नेफ्था गैस, गन्धकाम्ल, नाइट्रोजन आक्साइड, क्लोरीन, फार्मलडीहाइड, कलोरीन डाई आक्साइड आदि फैलाते हैं। जिससे दमा, श्वास की अन्य बीमारियां, तपेदिक, वाईसिनोसिस जैसी व्याधियाँ होती हैं।

छोटे–बड़े वाहन भी वायु प्रदूषण के एक प्रमुख कारक हैं। वाहनों से निकलने वाले धुंए में नाईट्रोजन आक्साइड, कार्बन–मोनोआक्साइड, हाइड्रोकार्बन, अल्डीहाइड, लेड आक्साइड तथा अन्य अनेकों घातक तत्व उपलब्ध रहते हैं। कार्बन मोनो आक्साइड गैस से रक्त में फेफड़ों, हृदय तथा नाड़ियों में संचय–संचार की शक्ति का ह्रास हो जाना, सांस रोग तथा हृदय रोग हो जाना, आदि के लक्षण पाये जाते हैं। पेट्रोल में सीसे का प्रयोग करना वातावरण को और अधिक विषैला बनाता है। हाइड्रोकार्बन और नाइट्रोजन आक्साइड, फोटोकेमिकल प्रतिक्रिया के द्वारा, धूप व स्थिर अथवा मन्द हवा में कोहरे का निर्माण करते हैं, जो क्षेत्र को धुँधला बनाता है तथा आँखों में जलन पैदा करता है।

घरेलू प्रदूषण भी भारतवर्ष में बुरी तरह वातावरण को प्रभावित

कर रहा है। घरों के भीतर जलावन, कोयला, चूल्हा आदि जलाने से भी वायु बुरी तरह प्रदूषित हो रही है, वहीं घरों में विशेषकर खाना बनाने वाली महिलाओं के स्वास्थ पर भी हानिकारक असर पड़ रहा है। महिलाओं के सिवाय घर के अन्य सदस्य पर भी इस धुंए का व्यापक प्रभाव देखने में आया है। धुंए से बच्चों की श्वास क्रिया अधिक तेज चलती है, वे कद के नाटे होते हैं, विपरीत एवं दमघोटू वातावरण में बच्चों, युवकों तथा बूढ़ों में श्वास की अनेक बीमारियां परिलक्षित होती हैं।

ईंधन की लकड़ी, गोबर के कण्डे, खेतों का कचरा, घास–फूस, कोयला आदि जलावन के जलाने से कार्बन डाइआक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड, आर्गेनिक्स, पार्टिकुलेट, आदि गैसें बहुतायत मात्रा में निकलती हैं। शहरों में लगने वाली आग, वनों में फैलने वाली आग, तम्बाकू उत्पादन आदि में प्रयुक्त जलावन आदि के कारण भी वातावरण बुरी तरह प्रदूषित होता है।

हमारा देश भारत उष्ण कटिबन्धीय राष्ट्र होने से यहां की वायु में धूल की मात्रा भी काफी अधिक मात्रा में विद्यमान रहती है। खनन क्षेत्रों से उड़ने वाली धूल, नये निर्माण, सड़क आदि से भी पर्याप्त मात्रा में धूल के कण वायुमण्डल में फैल जाते हैं।

संकरे औद्योगिक क्षेत्रों के लोगों में दमा, तपेदिक, त्वचा के विभिन्न रोग, एलर्जी, रक्ताल्पता, आंखों में जलन, टी०वी० तथा श्वास के विभिन्न रोग बहुतायत मात्रा में होते देखे गये हैं। कपड़ा मिलों के निकटवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले तथा मजदूर–कर्मचारियों में कैन्सर अधिक पाया जाता है।

कच्चे तेल को साफ करने वाले कारखाने के आसपास वायुमण्डल में सल्फर की मात्रा काफी अधिक पायी जाती है, जिन ताप बिजलीघरों में गन्धकयुक्त कोयला प्रयोग किया जाता है, उस क्षेत्र में गन्धक युक्त गैसें बेतरह बढ़ जाती हैं। रासायनिक औद्योगिक समूह वातावरण में यूरिया कणों को बहुतायत मात्रा में बिखेरता है। ताप बिजलीघरों से निकलने वाला फ्लाईऐश यदि समुद्र नदी तालाब में छोड़ा जाता है तो उससे मछलियों के शरीर में भारी धातुओं के अंश जमा होने लगते हैं। जो मांस के रूप

में प्रयुक्त होकर मानव के आहार चक्र में पहुँचकर तरह–तरह की व्याधियाँ उत्पन्न करते हैं।

ग्रैफाइट की औद्योगिक ईकाइयां, वातावरण में ग्रैफाइड की महीन धूल वातावरण में उंडेलती जाती हैं जो वनस्पतियों को तो समाप्त करती है, साथ ही मानव शरीर में पहुंच कर भूख समाप्त कर देती है, बैचेनी बढ़ाती है, आंखों में जलन पैदा कर मनुष्य की आहार क्रिया को बुरी तरह बाधित करती है।

कार्बन धरती के अन्दर बहुतायत पाया जाने वाला अवयव है, यह कोयला, तेल, प्राकृतिक गैस, कार्बोनेट तथा मिश्रकार्बन के रूप में पाया जाता है। कार्बन डाईआक्साइड के रूप में भी यह वातावरण में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहता है।

सूर्य की किरणों के साथ भोजन प्राप्त करने में वनस्पतियाँ वायुमण्डल में विद्यमान कार्बनडाईआक्साइड के एक बहुत बड़े भाग का उपयोग कर लेती हैं। इस प्रक्रिया को फोटोसिंथेसिस प्रक्रिया कहा जाता है। एक अनुमान यह भी है, कि वातावरण में व्याप्त कार्बन डाईआक्साइड का एक बहुत बड़ा हिस्सा समुद्र भी सोख लेता है, लेकिन इस बारे में वैज्ञानिकों में मतभेद बने हुए हैं।

वातावरण में कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा बढ़ने एवं लगातार चलते, वन विनाश से पृथ्वी के वायुमण्डल की स्थिति चिन्तनीय बनती चली जा रही है।

इसी प्रकार सूर्य से पृथ्वी पर आने वाले विकिरण का लगभग चालीस प्रतिशत धरती के वातावरण में पहुंचने से पूर्व ही अन्तरिक्ष में वापस लौट जाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार शेष भाग का 15 प्रतिशत भाग वातावरण में जज्ब हो जाता है। विकिरण धरती के धरातल तक मात्र पैंतालीस प्रतिशत ही पहुंच पाता है। अन्ततः यह उष्मा के रूप में पुनः विकिरित होता है, अधिकांश उष्णता को वातावरण सोख लेता है तथा शेष भाग पुनः अन्तरिक्ष की ओर बढ़ जाता है, इस आधार पर वातावरण, आने वाली तथा जाने वाली ऊर्जा को सोखता भी है तथा पुनः विकिरित भी करता है। इस ."ग्रीन हाउस इफैक्ट" के लिए वातावरण में विद्यमान कार्बनडाईआक्साइड तथा अन्य अणु जिम्मेदार माने गये हैं। यह पृथ्वी के चारों ओर एक प्रकार का निरोधात्मक तथा रक्षात्मक

आवरण का निर्माण कर लेता है।

"ग्रीन हाउस इन्फैक्ट" में पृथ्वी में वापस लौटने वाली इंफ्रारेड रेडियोधर्मिता को जज्ब करने वाले प्रमुख तत्व कार्बनडाईआक्साइड के कारण जब इंफ्रारेड रेडियोधर्मिता अधिक जज्ब होने लगेगी तो विश्व भर का तापमान बढ़ने लगेगा।

दुनियां का तापमान बढ़ेगा तो इसे पूरी दुनिया के मौसम में भी अप्रत्याशित परिवर्तन होना भी लाजिमी है। ध्रुवीय क्षेत्रों में तापमान में काफी अधिक वृद्धि हो सकती है। वैज्ञानिकों का मानना है कि इस बीच धरती का तापमान 2-3 डिग्री तक बढ़ सकता है, धरती का औसत तापमान वर्तमान में लगभग 15 डिग्री सेन्टीग्रेड के आसपास माना गया है।

अनेक वैज्ञानिकों का मानना है, कि संसार किसी छोटे–मोटे हिमयुग से गुजर रहा है अन्यथा बीसवीं सदी में ही धरती काफी गरम हो चुकी होती।

अमेरिका के कोलोरोडो स्थित हाई आल्टिट्यूड लेबोरेटरी के अध्ययन के अनुसार सन् 1950 के आसपास के वर्षों से सूर्य कुछ सिकुड़ता हुआ नजर आ रहा है, उनका मानना है, कि इसी कारण धरती ठण्डी हो रही है कोलोरोडा का अध्ययन बताता है, कि फैलने तथा सिकुड़ने का सूर्य का आवर्त्त 76 साल का होता है। सूर्य द्वारा तापमान घटाने की प्रक्रिया तथा दूसरी ओर कार्बन डाईआक्साइड की ग्रीन हाउस प्रक्रिया के कारण, वर्तमान में पृथ्वी का तापमान स्थिर नजर आता है। अपनी समयावधि पूरी करने के बाद सूर्य जब फैलने लगेगा, तब वातावरण में व्याप्त कार्बनडाईआक्साइड अपना वास्तविक रूप दिखलाना प्रारम्भ करेगा। उस स्थिति के सूर्य की फैलाव की प्रक्रिया तथा कार्बनडाईआक्साइड की ग्रीन हाउस प्रक्रिया, दोनों धरती को गरम करना प्रारम्भ कर देंगे। धरती के गरम होने से पृथ्वी के वातावरण एवं मौसम में भारी परिवर्तन नजर आयेंगे, जिससे कई राष्ट्रों को भारी हित होगा तो कई राष्ट्र बर्बाद हो जायेंगे।

अधिसंख्य वैज्ञानिकों का मानना है, कि दुनियां के गर्म होने का सर्वाधिक असर ध्रुवीय प्रदेशों पर पड़ेगा। यूरोप, रूस, अमेरिका आदि देश गरम तथा सूखे रहेंगे वहीं दूसरी ओर उत्तरी अमेरिका,

पूर्व अफ्रीका, मध्यपूर्व भारत, मैक्सिको, पश्चिमी आस्ट्रेलिया आदि गीले रहेंगे। मौसम परिवर्तन का असर कृषि क्षेत्रों में भी पूरी तरह से परिलक्षित होगा।

भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान के प्रोफेसर ए०के० सिन्हा का मानना है, कि धरती का तापमान बढ़ने से धरती की नमी में वाष्पीकरण बढ़ सकता है जिससे विकासशील देशों की खेती पर प्रतिकूल असर पड़ेगा।

मध्य भारत का तापमान यदि 2-3 डिग्री सें.ग्रे. बढ़ता है तो इससे वाष्पीकरण में दैनिक 2-3 मि०मी० की वृद्धि हो सकती है, जिस कारण पानी का संकट खतरनाक ढंग से बढ़ सकता है, जिसका पैदावार पर भी बहुत बुरा असर पड़ेगा।

आस्ट्रेलिया स्थित 'इन्टरनेशनल इन्सिट्यूड फौर अप्लाइड सिस्टम अनालिसिस' के प्रोफेसर हरमन फलोन का मानना है, कि विश्व के इतिहास में लगभग एक करोड़ बीस लाख से पच्चीस लाख साल पहले विश्व का तापमान औसत से 4 डिग्री अधिक था। तब धुव्रीय क्षेत्रों में बर्फ नहीं थी।

प्रो० फलोन का यह भी मानना है, कि यदि जागतिक धरातल का तापमान एक डिग्री सेल्सियस बढ़ेगा, तो कनाडा और साइबेरिया के जंगल उत्तर की ओर बढ़ेंगे, अन्न उत्पादन योग्य भूभाग फैलेगा तथा उत्तरी भूभाग में अन्न की पैदावार बढ़ेगी, लेकिन केलिफोर्निया, स्पेन, मध्यपूर्व व निकटवर्ती इलाके में ताजे पानी की किल्लत बढ़ने के साथ–साथ खेती खराब होगी।

उनके अनुसार दुनियां का तापमान 1.5 डिग्री बढ़ेगा तो उत्तरी जंगल आज की जगह से 200-300 किमी० और उत्तर की ओर बढ़ेंगे। अफ्रीका के सहेल क्षेत्र पर फिर हरियाली छायेगी। भूमध्य रेखा के उत्तर और दक्षिण दोनों ओर से उष्णकटिबन्धीय रेगिस्तान सिकुड़ेंगे, लेकिन मध्य अक्षांशीय भाग में अकाल ज्यादा पड़ेगा। जहां आज घनी खेती होती है जैसे अमेरिका।

प्रो० फलोन का मानना है, कि यदि वर्तमान औसत तापमान 15 डिग्री सेन्टीग्रेड से 2.5 डिग्री बढ़ गया तो समुद्र की सतह आज से 5 से 7 मीटर तक ऊँची उठ सकती है, जिस कारण

एक बहुत बड़ा भूभाग जलमग्न होगा, क्योंकि ध्रुवीय प्रदेशों की बर्फ पिघलने लगेगी, वर्तमान में जो भूमि खेती योग्य बनायी गयी है उसका कुछ हिस्सा पानी में डूबेगा। उत्तर अमेरिका, यूरोप एवं एशिया के ध्रुव क्षेत्रीय तट प्रदेशों में छिटपुट पेड़ उगेंगे। लेकिन कई वैज्ञानिक, प्रो० फलोन के इस मत से सहमत नहीं हैं, उनके अनुसार यदि उत्तरी ध्रुव की बर्फ पिघलेगी भी तो उससे समुद्र की सतह ऊँची नहीं होगी।

प्रो० फलोन का मानना है, कि यदि विश्व का तापमान 4 डिग्री ऊँचा हो गया तो, उससे गरमी के मौसम में पड़ने वाले अकाल जल्दी जल्दी आयेंगे और सम शीतोष्ण क्षेत्रों के अनेक भागों में वे ज्यादा उग्र होंगे। उत्तरी ध्रुव की बर्फिली टोपी पूरी तरह गल जायेगी, लेकिन इसके विपरीत दक्षिणी ध्रुव बर्फ से आच्छादित रहेगा, जिससे धरती के जलवायु क्षेत्र आज की अपनी स्थिति से हटकर दूर उत्तर की ओर खिसकेंगे। वर्तमान में पश्चिम अंटार्कटिका की घनी बर्फीली परत के आसपास जनवरी में सबसे ज्यादा गरमी लगभग शून्य से 4 डिग्री सेन्टीग्रेड नीचे तक रहती है।

वातावरण में गैसों का जमाव एक खतरनाक खतरे की घंटी की पूर्व चेतावनी है। सल्फर-डाई-आक्साइड वातावरण की नमी पाकर सल्फरस तथा सल्फुरिक एसिड में परिवर्तित हो जाता है। यह घातक एवं खतरनाक एसिड बारिश के साथ पृथ्वी पर गिरती है जिसे तेजाबी वर्षा कहा जाता है। एसिड वर्षा यूरोप तथा अमेरिका में बहुत पहले प्रारम्भ हो चुकी है। उत्तर अमेरिका की एसिड वर्षा से कनाडा तक की खेती और जंगलों को भारी नुकसान पहुँचा, इसी तरह इस वर्षा से नार्वे के दक्षिणी भागों के जलाशयों में मछलियाँ पूरी तरह समाप्त हो गयीं।

एसिड वर्षा केवल मानव स्वास्थ के लिए ही नहीं बल्कि जीवमात्र, वनस्पति एवं खेती के लिए भी अत्यधिक घातक है।

कार्बनडाईआक्साइड पर विस्तृत चर्चा के उपरान्त यह आवश्यक हो जाता है, कि वायु प्रदूषक अन्य प्रमुख गैसों से मानव स्वास्थ पर पड़ने वाले प्रभाव का भी संक्षिप्त अध्ययन कर लिया जाय।

कार्बन मोनो आक्साइड वायुमण्डल में व्याप्त एक अन्य खतरनाक गेस है। यह ईंधन के अधूरे जलने, मोटर वाहनों के धुएं, आदि से वातावरण में फैलाता है। मनुष्य में इसका पर्याप्त प्रभाव धूम्रपान करने वाले व्यक्ति के शरीर में भी पाया जाता है। कार्बन मोनो आक्साइड मुख्यतः आक्सीजन का टिशू घटाता है तथा सांस की बीमारियो को प्रभावित करता है।

गन्धक युक्त ईंधन, कोयला, तेल आदि के जलने से वातावरण में सल्फरडाईआक्साइड का फैलाव होता है। सल्फरडाईआक्साइड धुएं के साथ मिलकर और भी घातक व खतरनाक बन जाता है। यह सांस की बीमारी को बढ़ाता है। इस गैस से दम घुटना, आंखों में जलन, गले में खरांश जैसे लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। यह गैस खतरनाक रूप से वातावरण में पानी की भाप से मिलकर घातक एसिड वर्षा करती है, जिसका सबसे खतरनाक असर खेती, तथा वनस्पतियों पर पड़ता है। यह मिट्टी तथा जलाशयों को भी एसिडयुक्त बना देती है। जिससे जलचर तथा कृषि उपयोगी छोटे–छोटे कीट–जन्तु अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं। यह ऐतिहासिक एवं सुन्दर इमारतों को भी नुकसान पहुंचा कर जर्जर करने की क्षमता रखती है। ताजमहल की खोती चमक का कारक भी यही गैस है।

वातावरण में मिलने वाला एक अन्य घातक अवयव सस्पेन्डेड पार्टिक्लुलेट मैटर के नाम से जाना जाता है। यह घरों–वाहनों के धुओं तथा औद्योगिक ईकाइयों के धुएं के साथ वातावरण में फैलता है। रसायनिक दृष्टि से यह अत्यधिक विविधता वाला पदार्थ है, जिसके अन्य स्वाभाविक स्रोत धूल भरी आंधी, भूकम्पीय विस्फोट, समुद्री बौछार आदि भी हैं। इसके मिश्रण के आधार पर इसका जहरीला एवं विषैला प्रभाव भी पृथक्–पृथक् किस्म का होता है। यह वातावरण में धुन्ध फैलाने, धूप कम करने तथा जंग बढ़ाने का कार्य करता है।

नाइट्रोजन आक्साइड के दो अंग हैं, प्रथम नाइट्रोजन आक्साइड तथा द्वितीय नाइट्रोजन डाई–आक्साइड। यह गैस भट्टियों में ईंधन जलाने, मोटर वाहनों के धुएं, घर में जलावन जलाने, जंगल तथा अन्यत्र लगने वाली आग से वातावरण में

फैलती है। यह गैस बच्चों में सांस के तीव्र रोगों की छूत को और नजले की शिकायत बढ़ाती है। जंग पैदा करती है तथा वातावरण की हवा में धुन्ध भरने का काम करती है।

वातावरण के अन्य प्रमुख प्रदूषकों में बोलाटाइड हाइड्रोकार्बन्स का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। यह कार्बन युक्त ईंधनों के आंशिक रूप से जलने, औद्योगिक प्रक्रियाओं, ठोस अवशेषों के निपटान आदि के कारण वातावरण में फैलता है। यह अन्य प्रदूषकों के साथ मिलकर आँखों में जलन पैदा करता है। इथलीन पौधों के लिए घातक है। एयरोसोल कण दृश्यमानता को घटाते हैं तथा दुर्गन्ध फैलाते हैं।

वातावरण को प्रदूषित करने में, आक्सीडेन्ट और ओजोन का भी बहुत बड़ा हाथ है। यह मुख्यतः यौगिक हैं, जो अलग–अलग प्रदूषक तत्वों के वातावरणीय क्रिया–प्रतिक्रियाओं से बनते हैं। ओजोन प्राकृतिक है और वातावरण के ऊपरी भाग का एक प्रमुख अंग भी है। ये यौगिक आँखों में जलन पैदा करते हैं तथा लोगों के फेफड़ों को जर्जर और कमजोर बनाते हैं और दृश्यमानता घटाते हैं। ओज़ोन पौधों के लिए बहुत भयानक और विषैला प्रदूषक है।

स्वस्थ जीवन के लिए स्वच्छ वायु का अत्यधिक महत्व है। वायु प्रदूषण मानव में अनेक घातक बीमारियों का प्रवेश दिलाता है और व्यक्ति की उम्र घटाता है। अतः वायु प्रदूषण रोकने के लिए व्यक्तिगत सामाजिक स्तर के साथ–साथ राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यवाही की जानी आवश्यक है, तभी धरती पर मानव जीवन को खुशहाल और सुखी रखा जा सकता है। वायु प्रदूषण रोकने के लिए औद्योगिक संस्थानों में प्रदूषण नियन्त्रक यन्त्रों एवं रिफ्लैक्टरों के लगाये जाने के प्रति सरकारों, जनता एवं औद्योगिक समूहों को मिलजुलकर काम करना होगा क्योंकि इससे प्रदूषण की मात्रा घटायी जा सकती है।
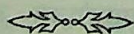
12
शहरीकरण के दुष्प्रभाव

भारतवर्ष यद्यपि गांवों का देश माना जाता है पर यहां शहरीकरण की प्रक्रिया जोरों में है। रोजी–रोटी की तलाश में हजारों–लाखों लोग प्रतिवर्ष गांवों से शहरों की ओर पलायन करते हैं। गांवों से शहरों की ओर पलायन से भी अनेक ऐसी परिस्थितियां बन जाती हैं जो, समयान्तर में मानव के स्वास्थ को प्रभावित करती हैं।

शहरीकरण की इस प्रक्रिया के शासन–प्रशासन एवं औद्योगिक समूह पर्याप्त रूप से जिम्मेदार हैं। ग्रामीण विकास कार्यक्रम अधिकतर कहने–सुनाने की बातें भर रहीं, जबकि औद्योगीकरण की प्रक्रिया, गांवों के साथ भेदभाव के चलते हुए शहरों तक ही सीमित रही। नतीजा ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन बदस्तूर जारी है।

गांवों से शहरों की ओर पलायन करने वालों अथवा बेरोजगारों के आधार पर शहरों में काम मिलने की सम्भावनाएं अत्यधिक कम हैं। जिस कारण हाथ अधिक और काम कम होने से मजदूरों आदि का जमकर शोषण होता है। उनके शरीर को समुचित पौष्टिक आहार नहीं मिल पाता है। जिस कारण धीरे–धीरे उनका शरीर क्षीर्ण होता चला जाता है और व्यक्ति को अनेक बीमारियां आ घेरती हैं।

रोजी रोटी की तलाश में शहर आने वाले लोग जो निर्धन तबके के होते हैं। एक–एक कमरे में कई कई एक साथ रहते हैं। साथ खाने–सोने, पीने, कंघी, बिस्तर, साबुन, तौलिय। आदि आपस में प्रयोग करने से एक–दूसरे की बीमारियों का उनके

आपस में संक्रमण होता चला जाता है।

शहरों में होने वाले जनसंख्या विस्फोट से झुग्गी झोपड़ियों का संख्या निरन्तर बढ़ती चली जा रही है। झुग्गी झोपड़ियों में रहने वाले लोग खुद तो नारकीय जीवन जीते हैं, साथ ही इनके जीने के ढंग से शहर गन्दा होता है, जो तरह–तरह की व्याधियों का जनक होता है।

शहरों में न जाने कितने लोग, सड़कों, फुटपाथों, पार्कों आदि सार्वजनिक स्थलों पर जीवन बिताने के लिए बाध्य हैं। इन वक्त की मार के थपेड़े सहने वालों लोगों तथा झुग्गी–झोपड़ियों में निवास करने वालों को, मुख्यतः खुले में ही शौच करना पड़ता है। जिससे, कालरा, टाइफाइड, पेचिश, अतिसार तथा पीलिया जैसे रोग फैलते हैं।

कहीं–कहीं पर बाल्टी पद्धति यानि उठाऊ पाखाने की पद्धति विद्यमान है, जो सबके लिए हानिकारक है। शहरों में जहां सीवर लाइनें नहीं बिछी हैं, वहां अक्सर मलमूत्र को खुली नालियों में गिरा दिया जाता है। जो दुर्गन्धदायक होने के साथ–साथ बीमारियों का खुला आमन्त्रण भी है।

झुग्गी झोपड़ियों अथवा फुटपाथों पर रहने वाले लोगों को मजबूरीवश, खुली जगहों, सड़कों, रेलवे लाइनों में पाखाना बैठना पड़ता है, जिससे उनका स्वास्थ तो बुरी तरह प्रभावित तो होता ही है, साथ ही शहर में रहने वाले अन्य लोगों के लिए भी यह व्याधियों के सन्दर्भ में खतरे की घंटी की तरह कार्य करता है। इससे अक्सर शहरों में अनेक जानलेवा संक्रामक रोग फैलते हैं जो अनेक लोगों की जीवन लीला समाप्त कर जाते हैं।

शहरों में रहने वाले इन निम्न स्तर के लोगों की सबसे प्रमुख समस्या पानी की है। अक्सर शुद्ध पेयजल तो इन्हें उपलब्ध ही नहीं हो पाता है। शहरों में औद्योगिक ईकाइयों की भरमार व अन्य कारणों से भूमिगत पेयजल भी पूरी तरह प्रदूषित होता जाता है। गरीबी के मारे इन लोगों की पेयजल की आपूर्ति में हैण्डपम्प प्रमुख भूमिका निभाते हैं। भूमिगत पेयजल के गन्दला एवं प्रदूषित होने से इन्हें लगातार भिन्न–भिन्न तरह की बीमारियां आ घेरती हैं।

सामुदायिक रूप से रहने से ही बीमारियों का फैलाव नहीं

होता बल्कि सामुदायिक शौचालयों का उपयोग करने पर भी अनेक संक्रामक बीमारियों का भी शरीर में प्रवेश हो जाता है।

शहरीकरण के कारण यौन बीमारियों में भी अप्रत्याशित रूप में वृद्धि देखी गयी। गांवों से शहरों में पलायन के कारण, स्त्री और पुरुष के अनुपात में भारी फर्क आ जाता है, जिससे यौन अपराध तथा दुराचार की घटनाएं बढ़ती हैं। अधिसंख्य कामगार व मजदूर वैश्यालयों की शरण लेकर, तरह–तरह के यौन रोगों को खुला आमन्त्रण देते हैं। औद्योगीकरण एवं जनसंख्या के अनुपात में असन्तुलन होने के कारण, औद्योगिक संस्थानों में अनेक युवतियों को, नौकरी प्राप्त करने की शर्त पर देह शोषण का शिकार होना पड़ता है। भारत वर्ष में औद्योगिक संस्थानों में यौन शोषण की घटनाएं पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। जिस कारण भी अनेक प्रकार की यौन व्याधियों व अन्य संक्रामक रोगों का तेजी से फैलाव हो रहा है।

शहरों में जनसंख्या का बढ़ता बोझ, कई अन्य तरह की बुराईयों को भी प्रश्रय देता है। विभिन्न प्रकार के नशा लेने वालों एवं अपराधियों की तादात भी बढ़ती चली जाती है। विस्फोटक जनसंख्या के कारण, छोटे स्तर पर खाद्य–पदार्थों एवं भोजन में मिलावट–सड़ा गला, बासी आदि का खुलकर प्रयोग किया जाता है, जो भी मानव स्वास्थ के लिए अत्यधिक हानिकारक है। शहरों का हाल तो इतना बुरा हो चुका है, कि गर्मी में ठण्डे पानी के गिलास में साधारणतया प्रदूषित हैण्डपम्पों का पानी मिलाकर बेचने का धन्धा तक खुलेआम पनप रहा है। आपाधापी के दौर में इस तरह के खान–पान स्वास्थ के लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं।

शहरों में अत्यधिक कम पूंजी में अपना जीवन यापन करने वाले लोग अक्सर छोटी–मोटी बीमारियों को धन के अभाव में नजर अन्दाज कर देते हैं, जिस कारण छोटी सी बीमारी बढ़ते बढ़ते अत्यन्त घातक होकर जानलेवा बन जाती है।

शहरों में निम्न स्तर का जीवन जीते लोग अपने कचरे को भी अक्सर खुला छोड़ देते हैं, क्योंकि जिनके पास सिर छुपाने के लिए ही जगह न हो, भला वे अपना कचरा कहां फैंकेगे? इस

कचरे से भी कई तरह की बीमारियाँ बढ़ती हैं।

औद्योगिक कामगारों को पर्यावरण, प्रदूषण एवं उससे सुरक्षा की कोई जानकारी न होने से औद्योगिक समूहों में काम करके ये लोग अनेकों घातक बीमारियों को भी आमन्त्रण देते हैं। कीटनाशक दवाओं, घातक रसायनों की औद्योगिक ईकाईयों, परमाणु बिजलीघरों आदि खतरनाक उद्योगों में काम करने वाले मजदूर, उक्त औद्योगिक ईकाई की भयानकता के बारे में कुछ नहीं जानते तथा किसी तरह की विशेष सावधानियां भी नहीं बरतते। इसी कारण ऐसी खतरनाक औद्योगिक ईकाईयों में काम करने वाले छोटे स्तर के कर्मचारी एवं मजदूर जाने–अनजाने खतरनाक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। इन लोगों को स्वच्छता, स्वास्थ, पर्यावरण की शिक्षा के साथ–साथ इन्हें रोटी–कपड़ा और मकान उपलब्ध कराने हेतु सरकारों को समुचित कदम उठाने चाहिए तथा शहरों की ओर सिमटते औद्योगीकरण को गाँवों की ओर भी फैलाना चाहिए ताकि शहरों का अतिरिक्त दबाव घट सके।
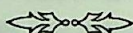
13
बरतन एवं स्वास्थ पर दुष्प्रभाव

वर्तमान भौतिकवादी युग, मानव पूर्वजों के जिस प्राचीन युग को पिछड़ा समझता है, उस युग में कई बातें आचार–व्यवहार, खान–पान आदि के मामले में, प्राचीन मानव आज के मानव से समझदार और सौभाग्यशाली था। आधुनिकता एवं भौतिकवादिता की आड़ में, इस युग का मानव जाने अनजाने नयी–नयी बीमारियों को आमन्त्रण दे रहा है।

भोजन एवं खाद्य सामग्री के मामले में बरतनों का उपयोग अति आवश्यक है। भोजन के साथ बरतन भी मानव की एक आधारभूत आवश्यकता है।

बरतनों का स्वरूप भी विभिन्न कालों में भिन्न भिन्न रहा है। पाषाण काल में पत्थरों के बरतनों का उपयोग किया जाता था, कालान्तर में पत्थर के बरतनों के साथ साथ मिट्टी के बरतनों का भी उपयोग किया जाने लगा। स्वास्थ एवं वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो बरतनों का यह युग ही श्रेष्ठ था।

धीरे–धीरे मानव जाति कथित सभ्य होती चली गयी। सभ्यता की इस अन्धी होड़ में मानव जीवन में परिवर्तन आता चला गया। इस परिवर्तन की आपाधापी में मानव अपने पूर्वजों की अच्छाईयों को भी नजर अन्दाज करता चला गया।

परिवर्तित युग में, ताँबे, पीतल, ताँबा, लोहा काँसे आदि के बरतनों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। इस दौर में राजघरानों में जहाँ सोने–चाँदी के बरतनों का बाहुल्य था, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में, ताँबा–लोहा, पीतल आदि धातुओं के बरतनों के

साथ–साथ मिट्टी के बरतनों का भी भरपूर प्रयोग किया जाता था। दही, दूध आदि के लकड़ी के बरतनों का प्रयोग भी प्रचलन में था। मिट्टी के बरतनों के भोजन का स्वाद ही निराला है। यह वह समय था, जब एल्युमीनियम तथा वर्तमान में चल रहे अन्य घातक धातुओं के बरतन प्रचलन में नहीं थे।

आज एल्युमीनियम, गाँव से शहर, सड़क से महल, गरीब से सम्पन्न घरों तक सभी जगह अपने पाँव पसार चुका है। पूरा समाज और पूरी दुनियाँ, इन आधुनिक बरतनों की भयानकता को जाने बिना, लगातार इनका प्रयोग करती चली जा रही है।

एल्यूमीनियम आधुनिकता की देन है। सम्भवतः इसकी सुलभता, कम भारीपन, व सस्ता होने के कारण, यह अधिक प्रचलन में आ गया है। यह सस्ता होने के साथ–साथ जल्दी गर्म भी होता है, और ईधन की खपत भी कम करता है। यही वे सारे कारण हैं जिसके कारण लोग इस धातु का अधिकतम प्रयोग करने लगे।

एल्यूमीनियम धातु के बने बरतनों का प्रयोग खतरनाक ही नहीं बल्कि स्वास्थ के लिए बेहद हानिकारक है। इस धातु के बरतनों में भोजन बनाना, बीमारियों व मौत को दावत देने के समान है। अन्य धातुओं के बरतनों में बनाये गये भोजन से, एल्यूमीनियम के बरतन में पकाया गया भोजन कई गुना विषाक्त और हानिकारक होता है।

एल्यूमीनियम के बरतनों से एक प्रकार का अत्यन्त घातक जहर फैलता है, जो मानव के पाचन तन्त्र पर बहुत गहरा प्रभाव डालता है।

अमेरिका रसायन समिति के, डा० बोग्ले तथा डा० होमिलटन ने अपने अध्ययन के बाद परिणाम निकाला है कि–"कुछ ब्याधिग्रस्त लोगों का प्रयोग के तौर पर एल्यूमीनियम के बरतनों में भोजन, चाय–काफी का प्रयोग रोकने से, अल्पसमय में ही आश्चर्यजनक परिणाम सामने आये। उन्होंने अपने इस अध्ययन के बाद, इस धातु के बरतनों के प्रयोग को निषिद्ध कर दिया था।

पर्यावरण विकास समिति के अनुसार एल्यूमीनियम की बिषाक्तता का परिणाम यदि कोई व्यक्ति जाँचना चाहे तो, वह

अति सरल है। एल्यूमीनियम के बरतन में दूध को गर्म कर लिया जाय और उसी में जमने को छोड़ दिया जाय। दूध जमने के पश्चात प्राप्त दही को व्यक्ति खा नहीं सकता है क्योंकि वह विषाक्त ही नहीं, बल्कि बेहद कडुवा भी हो जाता है, गरम किया जाने वाला दूध सोडायुक्त या डेयरी का हो तो उसके परीक्षण में समुचित सुविधा मिलेगी।

एल्यूमीनियम पेट के लिए अत्यन्त हानिकारक है। इस धातु के बरतनों में भोजन पकाने से इसके कुछ अंश भोजन में घुलकर पेट में पहुँच जाते हैं, जो स्वास्थ को नुकसान पहुँचाते हैं। इसके लवण शरीर के लिए अत्यन्त खतरनाक एवं घातक होते हैं, ये लवण शरीर में उपलब्ध पोटेशियम तथा सल्फर को अवशोषित कर लेते हैं जिससे शरीर की ग्रन्थियों की नियन्त्रण प्रणाली की व्यवस्था अपंग बननी प्रारम्भ हो जाती है। इससे शरीर की श्लेष्मीय ग्रन्थियाँ तो, इस सीमा तक प्रभावित होती हैं कि इससे शरीर में फोड़े फुन्सियाँ निकलनी प्रारम्भ हो जाती हैं। किसी किसी का चेहरा तो अत्यधिक बदसूरत भी हो जाता है।

एल्यूमीनियम के लवण, शरीर में रक्त क्रिया को भी वाधित कर इसमें खून की कमी पैदा करते हैं, इसके शरीर में इकट्ठा होने से खुजली की शिकायत बढ़ जाती है। ऊतक नष्ट होने लगते हैं और सूजन होने लगता है। लासिका ग्रन्थियों के सूजन का भी इस धातु के लवण प्रमुख कारक हैं।

एल्यूमीनियम हाइड्रोकलोरिक एसिड (अम्ल) के साथ सहज घुलनशील होता है। इस धातु के बरतन में पकते भोजन में जब नमक डाला जाता है तो उससे रसायनिक क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। जिसके परिणामस्वरूप एल्यूमीनियम हाइड्रोक्लोराइड बनता है। एल्यूमीनियम हाइड्रोक्लोराइड एक नशीला व घातक पदार्थ होता है। इसके सिवाय एल्यूमीनियम के सल्फेट के संग क्षारीय सल्फेट क्रियाशील होकर फिटकरी का निर्माण करते हैं। इन खतरनाक एवं घातक रसायनिक पदार्थो के कारण, पेट की छोटी मोटी बीमारियों के साथ अत्यन्त घातक बीमारियाँ पेट का अल्फर, पक्षाघात तथा फास्फेट की कमी से होने वाली बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। शरीर में एल्यूमीनियम का अधिक जमाव मस्तिष्क

की क्रियाशीलता पर भी घातक प्रभाव डालता है। इससे मनुष्य की स्मरणशक्ति सदा के लिए समाप्त अथवा कम हो सकती है।

एल्यूमीनियम के बरतनों में, विशेषकर चाय बनाना, दूध उबालना, पेयजल के रूप में प्रयुक्त करना, फूलगोभी, बन्दगोभी, शलजम, गाजर, टमाटर, मूली, खट्टापन युक्त साग–सब्जी, दही जमाना और भी घातक होता है। इन बरतनों में भोजन बनाते समय भोजन में सोडा अथवा नमक का प्रयोग कई खतरनाक असाध्य बीमारियों का निमन्त्रण देना है। पुराने, एल्यूमीनियम के गड्ढे युक्त, घावयुक्त बरतनों में भोजन बनाना नये बरतनों में भोजन बनाने से कई गुना अधिक घातक एवं खतरनाक है।

प्राचीन समय से प्रचलित ताँबा–पीतल आदि के बरतनों में भोजन बनाना बहुत अधिक हानिकारक नहीं है बशर्ते कि वे बरतन घाव व गड्ढे युक्त न हों। ताँबे अथवा पीतल के बरतनों में भोजन बनाकर लम्बे समय तक नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि इन बरतनों में भी भोजन लम्बे समय तक रहने के कारण, विषाक्त हो जाता है, जो कि एक प्रकार का जहर ही है इससे मनुष्य की मृत्यु तक हो सकती है।

ताँबे के बरतन में रखे बासी भोजन के तल में, हल्की रक्तता लिया पदार्थ ताँबे का जहर होता है, पीतल के बरतन में विषाक्त हुए भोजन का रंग स्वर्णिम किस्म का हो जाता है, वह भी जहरीला होने के साथ–साथ स्वास्थ के लिए अत्यन्त घातक होता हैं। ताँबे के बरतन में बासी भोजन जहाँ जहर बन जाता है वहीं दूसरी ओर भोजन बनाने हेतु इसके बरतन का तत्कालीन प्रयोग स्वास्थ के लिए लाभदायक भी होता है, इससे शरीर को समुचित मात्रा में काफर की आपूर्ति हो जाती है। ताँबे के बरतन में पानी पीना अथवा बरतन को पानी पीने में प्रयुक्त करना भी स्वास्थ के लिए लाभदायक माना गया है।

लोहे का बरतन, भोजन बनाने हेतु सर्वाधिक उपयुक्त माना गया है, बशर्ते कि उसमें लगने वाले जंग से सावधानियाँ बरती जाय तथा बरतन के साफ सुथरा रखा जाय।

पश्चिमी अनुसन्धानकर्त्ता भी, इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, कि भारत की परम्परागत लोहे की कड़ाई में सब्जी अथवा भोजन

बनाने में उसकी पौष्टिकता कई गुना अधिक बढ़ जाती है। इन अनुसन्धानकर्त्ताओं का मानना है, कि भोजन बनाने में लोहे के बरतन को प्रयोग करने से रक्ताल्पता (एनीमिया) जैसी घातक बीमारी कोसों दूर रहती है।

लन्दन की सुश्री टेटे ने,अपने कुछेक सहयोगी अनुसन्धानकर्त्ताओं के साथ, अपने अनुसन्धान-प्रयोगशाला में लोहे की कड़ाई में सब्जी डालकर इसे बीस मिनट तक धीमी आँच में पकाया। प्रयोगिक तौर पर उन्होंने अन्य धातुओं के बरतनों में भी, इसी तरह सब्जी पकाई, इसके उपरान्त अनुसन्धानकर्त्ताओं के इस दल ने बारी–बारी से सभी धातुओं में पकायी गयी सब्जी का परीक्षण किया। लोहे की कड़ाई में पकने वाली सब्जी में आश्चर्यजनक परिणाम देखने को आये। इस कढ़ाई में बनी सब्जी में 50 मिलीग्राम लोहे की मात्रा पायी गयी, जो प्रतिदिन के भोजन से मिलने वाली मात्रा से दस मिलीग्राम अधिक है। अन्य बरतनों में बनी सब्जी की मात्रा नाममात्र अथवा बहुत कम थी।

लोहा शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक है। सामान्यतया व्यक्ति के भोजन में शरीर के मापन की दृष्टि से शरीर को समुचित लोहे की मात्रा नहीं मिल पाती है। शरीर में लोहे की कमी अनेकों बीमारियों की जनक है।

भारतवर्ष में गरीबी का अनुपात काफी अधिक है, जिस कारण सम्पूर्ण लोगों को सही पौष्टिक भोजन प्राप्त नहीं हो पाता है, इस स्थिति में शरीर को समुचित लौह मात्रा मिलने की कामना करना बेमानी लगता है। अतः लौह बरतनों का प्रयोग आम व्यक्ति के स्वास्थ में लाभदायक भूमिका निभा सकता है।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है, कि लौह तत्व को शरीर के लिए एक बेहत्तर तत्व भी नहीं मान लेना चाहिए, क्योंकि शरीर में किसी चीज की कमी भी जहाँ हानिकारक है, वहीं इसकी अधिकता भी स्वास्थ के लिए घातक होती है।

वसायुक्त शरीर वाले व्यक्ति को चाहिए, कि वह लौहयुक्त पदार्थों, बरतनों से बचे, क्योंकि सीमा से अधिक मात्रा में शरीर में जमा लौह तत्व दिल की बीमारियों को बढ़ाता है। महिलाओं के शरीर में लौह तत्वों की कमी होती है, इसी कारण उनमें दिल

की बीमारियाँ कम पायी जाती हैं। क्योंकि वैसे भी मासिक स्नायु के कारण महिलाओं के शरीर से काफी मात्रा में लौह तत्व शरीर से विसर्जित हो जाता है। सामान्यतया शरीर में उपलब्ध लौह तत्व लेने की शरीर की प्रक्रिया काफी धीमी तथा एक निश्चित सीमा तक होती है। अधिक वसायुक्त भोजन शरीर में लौह तत्व की कमी को बेअसर कर सकता हैं।

यदि व्यक्ति अपनी आधुनिकता, भौतिकता, विलासता या कहा जाये शर्म–हया छोड़ सकता हो तो, स्वास्थ की दृष्टि से मिट्टी के बरतनों का उपयोग समाज एवं व्यक्ति के हित में है। जिसके लिए विश्वस्तर पर सामाजिक जागृति लाना आवश्यक है।
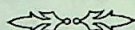
14
एक्स-रे के दुष्प्रभाव

चिकित्सा विज्ञान में एक्स-रे का उदय एवं प्रचलन एक चमत्कार माना गया, क्योंकि इसके माध्यम से शरीर के भीतरी अंगों में व्याप्त बीमारी, दोष, एवं अन्य जानकारियाँ आसानी से उपलब्ध होने लगी। इसके उदय से चिकित्सा जगत में एक क्रान्ति सी आ गयी थी, अमूमन प्रकृति का नियम होता है, कि जिस चीज में अच्छाईयाँ होती हैं, उसमें बुराईयाँ भी निहित होती हैं, यही बातें एक्स-रे के सन्दर्भ में भी लागू होती हैं। फिर भी आधुनिक चिकित्सा पद्धति में एक्स-रे का अपना विशेष महत्व है।

सामान्य एक्स-रे से लेकर मेमोग्राफी, सी०टी० स्कैन सभी में एक्स-रे का प्रयोग किया जाता है, लगभग हर छोटी-बड़ी बीमारियाँ इससे पकड़ में आ जाती हैं। वर्तमान के दो-तिहाई प्रमाणित चिकित्सा सम्बन्धी निर्णय एक्स-रे के परिणामों के आधार पर ही लिये जा रहे हैं।

उक्त आधार पर चन्द मिनटों में टूटी-फूटी अथवा सड़ी-गली हड्डियाँ, पेट में निगली गयी ठोस-अपाचक वस्तु, फेफड़े के विकार, गुर्दे की पथरी आदि बीमारियों दोषों का सहजता से ज्ञान हो जाता है।

एक्स किरण (एक्सरेज) विधुत् चुम्बकीय तरंगें हैं, जो साधारण प्रकाश की तरह ही होती हैं, पर इन्हें साधारण प्रकाश की तरह नंगी आँखों से नहीं देखा जा सकता है और न ही इन तरंगों को महसूस ही किया जा सकता है।

तरंगदैर्ध्य की दृष्टि से अवलोकन करें, तो स्पष्ट होता है, कि

साधारण प्रकाश की तुलना में इनका तरंग दैर्ध्य (0-03 से 100 एन्गास्ट्राम तक) होता है, पर इसकी फ्रीक्वेन्सी (आवृत्ति) दिखाई देने वाले प्रकाश से लाख गुनी अधिक हो सकती है। यह एक प्रमाणिक तथ्य है, कि जिस तरंग की तरंग दैर्ध्य अथवा तरंग की लम्बाई जितनी अधिक होती है, उसकी फ्रीक्वेन्सी उतनी ही अधिक होती है। यह बात एक्स किरणों के बारे में लागू होती है।

जिन तरंगों की आवृत्ति, जितनी अधिक होगी, उन किरणों में उतनी ही अधिक ऊर्जा भी निहित होती है, और वे किरणें अधिक पारगम्य भी होती हैं। साधारण प्रकाश की तरंगों में आवृत्ति कम होने से ही ये किरणें हमारे शरीर के आर–पार नहीं हो सकती हैं। परन्तु इसके ठीक विपरीत एक्स किरणों में आवृत्ति अधिक होने से ये सरलता से शरीर के आर–पार हो जाती हैं। माँस और हड्डी एक्स–किरणों के लिए पृथक्–पृथक् परिमाण में पारदर्शक हैं।

स्वास्थ रक्षा एवं बीमारी के पहचान में सहायक ये एक्स–किरणें एक ओर मानव जाति के लिए वरदान के रूप में जानी जाती हैं, वहीं दूसरी ओर इन्हें अभिशाप कहना भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा, क्योंकि इसने मानव स्वास्थ के लिए चिन्ताजनक परिस्थितियाँ एवं कठिन समस्याएं खड़ी कर दी हैं।

सम्भवतया यह बहुत कम लोग जानते होंगे कि एक्स–रे का पहला शिकार उसका जन्मदाता यानि आविष्कारक ही था, अपने ही जन्मदाता को खा जाने वाली, एक्स–किरणों की घातकता का अनुमान इसी घटना से लगाया जा सकता है। एक्स किरणों के जन्मदाता महान आविष्कारक, विलहेलम के रोंटजन थे। रोंटजन तथा उनके दो प्रमुख सहयोगी, गाइडो होल्ज कनेसट और डा० काइजन की मृत्यु भी एक्स किरणों के घातक प्रभावों से हुई थी।

एक्स–रे किरणों को सामान्य किरणें समझना एक भारी भूल होगी, ये बेहद शक्तिशाली और प्रभावीकारी किरणें हैं, जो जीव कोशिकाओं को पार करते हुए उन्हें गम्भीर रूप से प्रभावित करती हैं। कोशिकाओं से गुजरते समय ये किरणें, कोशिकाओं में रसायनिक अणु उत्पन्न करते हैं, जो शक्तिशाली आक्सीकारक (आक्सीडाईजिंग) या अवकारक (रिड्यूसिंग) अणु होते हैं। इन

अणुओं के प्रभाव से कोशिका के केन्द्र में स्थित डी०एन०ए० अणु में सूक्ष्म रसायनिक परिवर्तन हो जाता है। जो भविष्य में स्वस्थ कोशिका को कैन्सर कोशिका में परिवर्तित कर देता है।

चिकित्सा विज्ञान की शोध पत्रिका "यू इण्लैण्ड जर्नल आफ मेडिसिन" ने अपनी रिपोर्टो के माध्यम से बताया है कि छाती के एक्स–रे कराने से महिलाओं में स्तर कैन्सर का खतरा काफी अधिक बढ़ जाता है। पत्रिका का कहना है कि यह कैन्सर 25 साल बाद भी विकसित हो सकता है।

नये नये सक्रामक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि महिलाओं का स्तन रेडियो–धर्मी किरणों के प्रति अति संवेदनशील होते हैं। जिस कारण बहुत जल्दी ही एक्स किरणों से स्तन–कैन्सर हो सकता है।

कनाडा के राष्ट्रीय कैन्सर संस्थान के शोधकत्ताओं की एक टीम ने तपेदिक के इलाज के लिए एक्स–रे कराने वाली 32127 महिलाओं का परीक्षण किया और पाया कि इन महिलाओं में उल्लेखनीय ढंग से न केवल स्तन कैन्सर के संकेत मिले, बल्कि युवा वर्ग में इसका खतरा और अधिक ही था। एक्स–रे जितनी अधिक बार कराया जाय कैन्सर का खतरा उतना ही अधिक बढ़ता चला जाता है।

अमेरिका के न्यूयार्क रोबेस्टर स्कूल आफ मेडिसन एण्ड डेटिस्ट्री विश्वविद्यालय के शोधकत्ताओं ने बारह सौ महिलाओं का अध्ययन करने के उपरान्त एक्स–किरणों को कैन्सर बढ़ाने वाला घोषित किया।

स्तन कैन्सर के बारे में प्रमाणिक अध्ययनों का मानना है कि आयरन विकिरण विकसित होने के साथ स्तन की कुछ कोशिकाओं में रसायनिक परिवर्तन कर देता है। ये परिवर्तन तब तक निष्क्रिय रहते हैं जब तक कि कैन्सर को प्रोत्साहित करने वाला अन्य कारक रसायनिक रूप से परिवर्तित कोशिकाओं को क्षति नहीं पहुँचाते हैं।

महिलाओं में कैन्सर को प्रोत्साहित करने वाली प्रमुख कारक रजोधर्म की उम्र, प्रथम प्रसव की उम्र, रजोधर्म के निवृति के बाद, प्रसव के समय तथा पूर्व में खायी जाने वाली गर्भनिरोधक दवाएं

हैं, जो शरीर में होने वाली हार्मोन सम्बन्धी उतार–चढ़ाव से जुड़ी हैं। इस दौरान महिलाओं की स्तन की कोशिकाएं टूटती–जुड़ती रहती हैं। शोधकर्त्ताओं का कहना है कि बाल्यावस्था में लिये गये आयरन विकिरण से कैन्सर के खतरे को देखते हुए इसका उपयोग बहुत सोच–समझकर किया जाना चाहिए।

विश्व स्वास्थ संगठन की मेडिकल रिसर्च प्रोग्राम की रिपोर्ट के अनुसार एक्स–रे रेडिएशन (एक्स किरण–विकिरण) के प्रमुख घातक प्रभाव हैं– कोशिकाओं का क्षय होना, जीवनावधि में कमी आना, प्रजनन की अक्षमता, रक्त में दबाव की कमी (निम्न रक्तचाप) रक्तहीनता, शरीर में श्वेत रक्त कणिकाओं में कमी, त्वचा का झुलसना, कैन्सर अथवा रक्त कैन्सर।

भारत की राजधानी दिल्ली के गुरू तेग बहादुर अस्पताल के रेडियोलार्जी विभाग के प्रमुख के पद की शोभा बढ़ा चुके तथा जाने–माने प्रसिद्ध रेडियोलाजिस्ट डॉ० सतीश के भार्गव के अनुसार एक्स–रे विकिरणों से शरीर पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव दो प्रकार के होते हैं दैहिक तथा अनुवांशिक। शारीरिक अथवा दैहिक दुष्प्रभाव व्यक्ति के जीवन काल में कभी भी हो सकते है। यह असर तत्काल अथवा देर से भी देखा जा सकता है। जिसका सीधा सम्बन्ध सम्बन्धित व्यक्ति को एक्स–रे से मिलने वाली मात्रा पर निर्भर होता है।

डॉ० भार्गव के अनुसार, एक्स–रे के शारीरिक दुष्प्रभावों में प्रमुख हैं– जी मितलाना, शरीर में गरमी महसूस होना, सिरदर्द, उल्टियाँ आना, शरीर पर छाले पड़ जाना, त्वचा में जलन तथा त्वचा का चित्तीदार हो जाना आदि। उनके अनुसार, इसके दूरगामी परिणाम के प्रभाव शरीर में एक्स–रे की थोड़ी शोड़ी मात्रा एकत्र होने से लम्बे समय के बाद दृष्टिगोचर होते हैं। आँखों में मोतियाबिन्द हो जाना, बालों का असमय गिरना, त्वचा में घाव हो जाना, रक्त की कमी होना, रक्त कैन्सर हो जाना, उम्र से पहले बूढ़ा हो जाना आदि इसके दूरगामी परिणाम हैं।

डा० भार्गव एक्स–रे से होने वाले आनुवांशिक दुष्प्रभावों को भी खतरनाक बताते हैं। उनके अनुसार, अत्यधिक मात्रा में एक्स–रे लिये जाने के कारण इसका खतरनाक प्रभाव आने वाली पीढ़ी

पर भी पड़ता है। ये असर शरीर के प्रजनन अंगों पर एक्स–रे के दुष्प्रभाव के कारण होते हैं। उनके अनुसार इन दुष्प्रभावों में प्रमुख हैं–विकृत एवं विकलांग बच्चों का जन्म होना, नवजात शिशुओं को मानसिक रोग होना अथवा उनका समुचित ढंग से मानसिक विकास न होना अथवा कम होना, आने वाली पीढ़ी में रक्त कैन्सर की सम्भावना व आशंका, महिलाओं का बार–बार गर्भपात हो जाना आदि।

वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों से सिद्ध कर दिया है, कि एक्स किरणों का सर्वाधिक प्रभाव जनन कोशिकाओं पर पड़ता है। इससे जनन कोशिकाएं बुरी तरह क्षत विक्षत होकर नष्ट होने लगती हैं। जनन कोशिकाओं के नष्ट होने के कारण नपुंसकता का खतरा बढ़ जाता है। एक्स–किरणों के प्रभाव से पुरूष के शुक्राणु और नारी के डिम्बाणु में ऐसे असाधारण परिवर्तन हो सकते हैं जो आगे चलकर उत्पन्न बच्चों में शारीरिक विकृतियाँ, रक्त कैन्सर, कैन्सर आदि की स्थितियाँ उत्पन्न करते हैं।

ज्यादा बीज कोशिकाओं में तो, एक्स किरणों के परिवर्तन इतने अधिक गम्भीर होते हैं, कि वे स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं, जिसमें सूक्ष्म परिवर्तन भी होते देखे गये हैं, मात्र ऐसी ही कोशिकाएं, होने वाले बच्चों को नुकसान पहुँचाती हैं, स्थिति तब और गम्भीर होती है जब पुरूष के शुक्राणु और नारी के डिम्ब दोनों में ही एक सूक्ष्म परिवर्तन विद्यमान हो, इसकी सम्भावना इस बात पर अधिक निर्भर करती है, कि जनसमूह अथवा जनसंख्या का कितने प्रतिशत भाग में ऐसी अप्रभावित परिवर्तित बीज कोशिकाएं विद्यमान हैं। जितने अधिक लोगों में इस तरह की विकृत्तियाँ विद्यमान होगी उतने ही उनके मिलन अथवा सम्पर्क के फलस्वरूप कैन्सर अथवा एक्स–किरणों से सम्बन्धित बीमारियों का खतरा अधिक रहेगा।

राष्ट्र संघ की विकिरण का अध्ययन करने वाली एक रिपोर्ट बताती है कि एक्स किरणों का मात्र एक बार प्रयोग करने वाले व्यक्ति अथवा महिला के पूरे जीवन काल में कैन्सर अथवा सन्तति विकृत्तियाँ पायी जा सकती हैं।

गर्भवती महिलाओं तथा बच्चों पर एक्स किरणों का सर्वाधिक

दुष्प्रभाव पड़ता है। इससे गर्भवती महिला एवं गर्भस्थ शिशु में कई तरह की खतरनाक विकृतियाँ आ सकती हैं। इसी तरह पन्द्रह वर्ष से कम उम्र के बच्चे और बच्चियों का एक्स–रे कराना बड़ों की अपेक्षा अधिक खतरनाक साबित होता है, क्योंकि इस उम्र में बच्चे–बच्चियों के शरीर के अंगों का विकास तेजी से होता है।

स्वास्थ की दृष्टि से जहाँ एक्स–रे अत्यधिक खतरनाक व घातक हैं, वहीं इस वैज्ञानिक युग में इसका प्रयोग निरन्तर बढ़ता ही चला जा रहा है। इसका उपयोग चिकित्सा विज्ञान के अलावा वैज्ञानिक गवेषणाओं तथा उद्योगों में भी होने लगा है।

मोटर गाड़ियों तथा विमानों के अंगों का एक्स–रे परीक्षण, एक नियमित व्यवस्था बन चुकी है। सैकड़ों अन्य उत्पादों के सुधार में भी इसकी मदद ली जा रही है। मिश्र धातुओं तथा अन्य प्रकार के मिश्रणों को तैयार करने में भी इसकी सहायता ली जा रही है। कहने का आशय है कि मानव स्वास्थ को ताक पर रखकर इसके विवर्तन युक्त गुणों का जमकर दोहन अबाध गति से चल रहा है।

प्रसिद्ध रेडियोलिस्ट डा० सतीश के० भार्गव मानते हैं कि चिकित्सा विज्ञान में एक्स–रे के महत्त्व को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता, उनके अनुसार एक्स–रे को नकराने के स्थान पर उसके बचाव के तरीकों को अपनाना चाहिए।

आँकड़ों तथा अपने अध्ययन के आधार पर वे बताते हैं, कि प्रतिदिन किये जाने वाले एक्स–रे परीक्षण में लगभग पचास प्रतिशत लोगों की रिपोर्ट सामान्य आती हैं। उदाहरण के लिए अनिश्चित व अस्थिर पेट–दर्द की स्थिति में पेट का लिया गया एक्स–रे, थोड़े समय से खाँसी व बुखार की स्थिति में छाती का लिया गया एक्स–रे, पीठ के दर्द में रीढ़ की हड्डी का लिया गया एक्स–रे आदि।

डा० भार्गव मानते हैं कि ऐसी स्थिति में एक्स–रे के सम्बन्ध मे डाक्टरों को उदारता के बजाय सन्तुलन से काम लेना चाहिए अन्यथा इससे शरीर में एक्स–रे की मात्रा बढ़ने का खतरा बढ़ जाता है। उनका मानना है कि एक्स–रे का प्रयोग आखिरी क्षणों

में तभी किया जाना चाहिए जब अन्य तरीकों से रोग का बिल्कुल पता न चले अथवा एक्स–रे कराना अति आवश्यक हो।

डा० भार्गव का यह भी मानना है कि अनेक लोग बिना डाक्टर की सलाह लिए ही सबसे पहले एक्स–रे करा लेते हैं फिर उस रिपोर्ट को लेकर उसके बाद डाक्टर के पास जाते हैं। मरीज द्वारा बिना डा० की सलाह लिए स्व–आत्म–निर्णय के आधार पर एक्स–रे लेने की यह प्रक्रिया अत्यन्त घातक है, लोगों को इससे बचना चाहिए। इसी तरह छोटी–मोटी बीमारियों में भी एक्स–रे लेने से परहेज करना चाहिए।

एक्स–रे से कुछ हद तक बचाव सम्भव है, जिसके लिए सावधानियाँ बरतना काफी आवश्यक हैं। आज एक्स–रे की दुकानें गली--गली मुहल्लों तक खुल चुकी हैं। गैर चिकित्सा प्रणालियों में भी इसका प्रचलन काफी बढ़ गया है। अतः इससे विशेष सावधानियों की आवश्यकता है।

एक्स–रे लेने वाला कमरा सुरक्षा की दृष्टि से सही ढंग से बनाया गया हो ताकि विकिरण कम से कम मात्रा में बाहर जा सकें। एक्स–रे लेने से पूर्व दरवाजा ढकना भी सावधानी की श्रेणी में आता है।

एक्स–रे लेने से पूर्व यह भी जाँच कर लेना अति आवश्यक है कि क्या एक्स–रे लेने वाला रेडियोलाजिस्ट पूर्ण प्रशिक्षित है अथवा नहीं। कहीं बिना प्रशिक्षित व्यक्ति रेडियोलाजास्टि का काम तो नहीं कर रहा है। इस बात की भी जाँच की जानी आवश्यक है कि क्या एक्स–रे उपकरण सही ढंग से कार्य कर रहा है? उसमें कमियाँ तो नहीं हैं।

एक्स–रे कमरे में जब किसी व्यक्ति का एक्स–रे लिया जा रहा हो, तब किसी तीसरे व्यक्ति को उस कमरे में नहीं रहना चाहिए क्योंकि अनजाने में वह व्यक्ति एक्स–रे के दुष्प्रभावों के चक्र में फँस सकता है।

मरीज को अपने एक्स–रे रिकार्ड सँभालकर रखने चाहिए ताकि भविष्य में जरूरत पड़ने पर उसी आधार पर इलाज प्रारम्भ किया जा सके तथा दुबारा एक्स–रे लेने की प्रवृति से बचा जा सके।

महिलाओं के पेट सम्बन्धी एक्स–रे माहवारी होने के प्रथम दस दिनों के भीतर करानी चाहिए। शेष समय एक्स–रे कराने से बचना चाहिए।

गर्भवती महिलाओं को भी पूरी तरह, एक्स–रे कराने से बचाना चाहिए, यदि एक्स–रे कराना अति आवश्यक हो तो, उस स्थिति में डाक्टर से पूरी सलाह लेकर, एक्स–रे कराना चाहिए और कोशिश की जानी चाहिए कि एक्स–विकिरणों की चपेट में गर्भ में पल रहा शिशु कम से कम आ पाये।

बार–बार एक्स–रे कराने से भी बचाना चाहिए, बहुत ही आवश्यक हो तब भी चौबीस घंटे के भीतर एक–आध से अधिक बार एक्स–रे नहीं करवाना चाहिए।
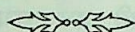
15

नेलपालिश एवं उसके दुष्प्रभाव

महिला सौन्दर्य प्रसाधनों में नेलपालिश का महत्वपूर्ण स्थान है, नेलपालिश एक निर्धन घर से लेकर सम्पन्न घरों तक सभी जगह प्रयोग में लायी जाती है। महिलाएं श्रृंगार पर विशेष ध्यान देती हैं, महाकवि भूषण ने सम्भवतया महिलाओं की श्रृंगार के प्रति विशेष रुचि को देखकर तथा श्रृंगारिक महिला की, चार चाँद लगते मोहक रूप को देखकर ही –'भूषण बिन न विराजहि, कविता वनिता मित्त; जैसी काव्य की रचना की होगी। वास्तव में यह बात सत्य भी है, कि श्रृंगार से महिलाओं में ज्यादा आकर्षण, मोहकता तथा सुन्दरता निखर कर उसके सम्मोहक रूप में चार चाँद लगा देती है, जिसकी परिणीति नित नये–नये श्रृंगारिक प्रसाधनों की उत्पत्ति तथा प्रचलन बढ़ने लगा, जिसमें से कई श्रृंगारिक प्रसाधन महिला जगत में अत्यधिक लोकप्रिय हो चुके हैं, इन्हीं लोकप्रिय प्रसाधनों में नेलपालिश का स्थान अग्रपंक्ति में है।

महिलाएं अपने नाखूनों की सुन्दरता बढ़ाने हेतु,अपने नाखूनों को काटती–संवारती हैं, तथा तरह–तरह के विभिन्न रंगों के नेलपालिशों का प्रयोग करती हैं।

नेलपालिश को स्वास्थ की दृष्टि से एक बेहद खतरनाक व घातक जहर के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। महिलाएं ये नहीं जानती हैं, कि नाखूनों की सुन्दरता बढ़ाने के लिए वे जिस नेलपालिश का प्रयोग कर रही हैं, उससे वे अनजाने ही कई घातक बीमारियों को ही दावत दे रही हैं तथा विशेष रूप से कुछ परिस्थितियों में, वे अपने साथ अपने परिजनों को भी

इसके हानिकारक दुष्प्रभावों की परिधि में लपेट रही हैं।

विश्व स्वास्थ संगठन ने नेलपालिश को स्वास्थ के लिए जहरीला–विषाक्त एवं घातक प्रसाधन घोषित किया है। नेलपालिश का निर्माण, कई घातक एवं विषैले रसायनों के घटकों के समिश्रण से किया जाता है, इसमें प्रयुक्त घातक रसायनों में एसीटोन, स्प्रिट, आइसो–प्रोपायल, टोल्यूएशन, टाइटेनियम आक्साइड, नाइट्री– सेल्यूलोज अल्कोहल, फार्मल–डी–डाईड्रेरिसन, जिलेन, टांरेन, फिनॉल आदि प्रमुख हैं, सभी रसायनों के सामान्य कुप्रभाव दाद, खुजली, चमड़ी उतरना, अन्य चर्मरोग, सिरदर्द, श्वास सम्बन्धी तकलीफें, फेफड़ों में जलन, नाखूनों की बदरंगता तथा कैन्सर जैसे घातक रोगों के रूप में परिलक्षित होते हैं। जबकि इस रसायनों की पृथक्–पृथक् रूप से घातकता भी कम नहीं है।

नेलपालिश में प्रयुक्त होने वाला घातक रसायन टोल्यूएशन रसायन मिथाइल बैन्जीन के नाम से भी जाना जाता है, यह स्वास्थ के लिए घातक रसायन है, इसके प्रभाव से सिरदर्द, चक्कर आना, आँखों के आगे अँधेरा छाकर गिर जाना, भूख न लगना, पेट घूमना, उल्टी हो जाना, श्लेष्मा झिल्ली में तीव्र जलन जैसी व्याधियाँ–परेशानियाँ उभरकर आती हैं। ये प्रभाव तात्कालिक भी हो सकते हैं तथा दूरगामी भी।

टोल्यूएशन की तरह का, नेलपालिश में प्रयुक्त किया जाने वाला अन्य घातक घटक का नाम, फार्मल–डी–हाइड्रेरिसन है, जो एक प्रकार का विषैला अम्ल (एसिड) है। यह एसिड इतना अधिक तीव्र और खतरनाक होता है, कि इसे मात्र एक बार भी नाखूनों पर प्रयोग करने से उसका प्राकृतिक सौन्दर्य तथा रंग हमेशा–हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है, बार–बार इसे प्रयुक्त किया जाना नाखूनों के लिए अभिशाप है। इस अम्ल में जलन पैदा करने की तीव्र शक्ति होती है, यह नाक एवं श्वसन संस्थान के ऊपरी हिस्से को बुरी तरह प्रभावित करता है।

फार्मल–डी–हाइड्रेरिसन नामक एसिड कई तरह की श्वास की तकलीफों का भी उत्तरदायी होता है, इससे दमा जैसे भयानक रोग की उत्पत्ति होते देखी गयी है, यह मूत्र–प्रणाली को भी

अस्त–व्यस्त करने में समर्थ है जिससे गुर्दे की बीमारियाँ होती है, यह अम्ल कई अन्य दृष्टियों से भी स्वास्थ पर अपने दुष्प्रभाव छोड़ता है।

नेलपालिश को जल्दी सुखाने हेतु इसमें स्पिरिट का समिश्रण भी किया जाता है, यही कारण है कि नेलपालिश की शीशी खोलते ही तथा नाखूनों पर लगाते समय इससे जल्दी सूखने की प्रक्रिया में तेज गन्ध निकलती है और नेलपालिश का अल्प समय में वाष्पीकरण हो जाता है। इसमें पाये जाने वाले घातक घटकों का वाष्प मनुष्य के फेफड़ों में पहुँचकर उसे क्षतिग्रस्त कर देता है, जो फेफड़ों में होने वाले कैन्सर के लिए प्रेरक का कार्य करता है, स्पिरिट यदि किन्हीं कारणों में रक्त में मिल जाय तो उससे रक्त एवं स्वास्थ सम्बन्धी कई विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

नेलपालिश बेचने वाली कम्पनियों ने साधारणतया आम जनता में ऐसी भ्रान्तियाँ फैलायी हैं कि महंगी नेलपालिश घातक नहीं होती है जबकि इस तरह की भ्रान्तियाँ उपभोक्ता को बरगलाने भर हैं। नेलपालिश महंगी हो अथवा सस्ती स्वास्थ के लिए घातक होती हैं। सस्ती व घटिया नेलपालिश. जहाँ तुरन्त अपने घातक प्रभावों का दुष्प्रभाव दिखाना प्रारम्भ कर देती है वहीं दूसरी ओर महंगी नेलपालिश का कुप्रभाव कुछ समय बाद प्रारम्भ होता है।

नेलपालिश के दुष्प्रभाव नेलपालिश प्रयोग करने वाले के स्वास्थ पर ही नहीं पड़ते बल्कि जाने–अनजाने यह परिवार के अन्य सदस्यों के लिए घातक हो सकती है। नेलपालिश का टूट–टूट गिरना है। यह विशेषतः बरतन से पानी निकालने, आटा गूंथने, भोजन बनाने, सब्जी छौंकने तथा अन्य कारणों से भोजन व खाद्य पदार्थों में मिल जाने से, खाद्य पदार्थ व भोजन दूषित हो जाता है, क्योंकि इसमें पाये जाने वाले प्रदूषक व घातक घटक सीधे–सीधे मनुष्य के आहार–चक्र में चले जाते हैं। नेलपालिश लगाते समय आसपास के वातावरण में जो गन्धयुक्त वाष्प उठता है, वह साथ बैठे अन्य सदस्य व खास कर बच्चों के स्वास्थ के लिए अधिक हानिकारक होता है।

नेलपालिश निर्माता कम्पनियाँ इस प्रसाधन के बाहर चेतावनी

तथा प्रयुक्त घटकों का सामान्यतया नाम भी नहीं लिखते। यदि आवश्यक हुआ तो उसके बाहर नाम इतने छोटे अक्षरों में तथा अंग्रेजी में लिख देते हैं, ताकि जनसाधारण उसे पढ़ न सके अथवा उस पर उसका ध्यान न जाय।

नाखूनों को खूबसूरती प्रदान करने के चक्कर में नेलपालिश का प्रयोग करना स्वास्थ के लिए बुला–बुलाकर बुलायी गयी कई बीमारियों को आमन्त्रण देने के समान है, अतः इसके प्रयोग से बचना ही बेहतर है।

नाखूनों की प्राकृतिक सुन्दरता को स्वीकार करते हुए, नेलपालिश लगाने के बजाय, उसके स्थान पर हानिरहित प्रदूषण रहित, प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग उचित है, इस सन्दर्भ में स्वास्थ की दृष्टि से हानिकारक दुष्प्रभाव रहित परम्परागत रूप से तैयार मेहंदी का प्रयोग किया जा सकता है। नाखूनों को सलीके से काटकर, मैल गन्दगी न जमने देने से भी उसकी सुन्दरता बनी रहती है।

16
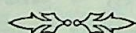
सुन्नत की रस्म व स्वास्थ

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष (यू०एम०एफ०पी०ए०) ने 1994-95 में विश्व स्तर पर किये गये अनुसन्धान के आधार पर पाया कि दुनियां के लगभग चालीस देशों में सुन्नत की खतरनाक प्रथा प्रचलित है। साथ ही उसने यह भी बताया, कि तत्कालीन समय में प्रति वर्ष अनुमानित आठ करोड़ के लगभग, मात्र महिलाओं की सुन्नत की जाती है, जबकि पुरुषों की संख्या इसके अतिरिक्त है।

अपने अध्ययन में संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष ने बताया कि खासतौर पर पूर्वी तथा पश्चिमी अफ्रीका तथा अरब देशों में महिलाओं में सुन्नत की प्रथा अधिक पायी गयी है। यू०एम०एफ०पी०ए० द्वारा जारी रिपोर्ट में यह भी अवगत कराया, कि इन देशों के लोग कई अन्य देशों में बसने के कारण यह रस्म उत्तरी अमेरिका तथा यूरोप के देशों में भी फैल चुकी है, यह रिपोर्ट विश्व जनसंख्या दिवस के अवसर पर जारी की गयी थी।

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष ने स्वास्थ और जीवन के लिए ''सुन्नत'' को अत्यधिक खतरनाक बताया है। यह विशेषतः महिलाओं के लिए और भी घातक है। इससे कई महिलाओं की तत्काल, कई की बाद में मौत हो जाती है। रिपोर्ट में यह भी अवगत कराया गया है कि सुन्नत वाली महिलाओं को यौन सम्बन्ध तथा प्रसव के दौरान भारी पीड़ा से गुजरना पड़ता है। सुन्नत के दौरान, पकने, नासूर हो जाने, संक्रमण के कारण अन्य कई प्रकार के घातक रोग होने के साथ साथ महिलाओं में बाँझपन

हो जाने का भी खतरा बना रहता है।

महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों में सुन्नत से स्थिति बिगड़ने की सम्भावना कम होती है, महिलाओं के लिए यह अधिक खतरनाक एवं घातक इसलिए भी अधिक होता है, क्योंकि महिलाओं में सुन्नत की प्रक्रिया अत्यन्त गम्भीर, जटिल और अतिवेदना-पीड़ादायक होती है। अलग-अलग राष्ट्रों में महिलाओं में सुन्नत का पृथक्-पृथक् तरीका प्रचलित है।

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष ने अपनी रिपोर्ट में अवगत कराया, कि महिलाओं के सुन्नत के प्रमुखतया तीन तरीके हैं। पहले वाले तरीके में महिलाओं की भगनासा (क्लिटोरिस) के अग्र भाग को काटकर फैंक दिया जाता है। जबकि दूसरे तरीके के सुन्नत में महिला की पूरी भगनासा तथा बाह्य जननांग (जैनिटेलिया) ही निकाल लिया जाता है।

यू०एम०एफ०पी०ए० की रिपोर्ट ने सुन्नत के तीसरे तरीके को अत्यधिक खतरनाक एवं कष्टप्रद घोषित किया है, इस तीसरे तरीके की सुन्नत को ''इंफिवुलेशन'' कहा जाता है। इस तरीके में स्त्री के बाहरी जननांग को पूरी तरह निकाल दिया जाता है तथा उसके बाद योनि के दोनों किनारों की सिलाई कर दी जाती है। इस विधि में केवल मूत्र तथा मासिक स्राव के निकलने के लिए योनि में एक छोटा सा छेद छोड़ दिया जाता है।

रिपोर्ट के अनुसार, सुन्नत चिकित्सकीय ढंग से नहीं की जाती है। आमतौर पर इसमें, शल्य चिकित्सकों, डाक्टरों, शल्यचिकित्सा के उपकरणों एवं औषधियों का सहारा नहीं लिया जाता है। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है, कि सुन्नत करने वालों को चिकित्सा का ज्ञान नहीं होता है, यही नहीं आमतौर पर एनेस्थीसिया (संवेदनशील) का प्रयोग किये बिना गन्दे और जंग लगे चाकू से ही सुन्नत की रस्म निभाई जाती है, जिससे भारी मात्रा में रक्तस्राव तथा असह्य वेदना होने से कई बार महिलाओं की मौत भी हो जाती है।

सुन्नत की रस्म प्रायः लड़की के किशोरावस्था में पहुंचने से पूर्व ही कर दी जाती है। कभी-कभार सुन्नत उस समय भी

की जाती है, जब महिला किसी बच्चे को जन्म दे चुकी होती है।

सुन्नत की प्रथा के सन्दर्भ में, इसके प्रारम्भिक चरण के बारे में अनेक मान्यताएं हैं, परन्तु प्रमुख मान्यता के रूप में पुराने जमाने से माना जाता था कि सुन्नत के बाद जिस्मानी सौन्दर्य में निखार आ जाता है। यों भी ब्रह्मचर्य पालन से जिस्म को खिलने निखरने में पर्याप्त मदद मिलती है। जबकि इसके विपरीत समाज विज्ञानियों की धारणा है कि सुन्नत का उद्‌देश्य महिलाओं की कामवासना में कमी लाना तथा उसके कौमार्य को पाकदामन बनाये रखना है। यह भी धारणा व्याप्त है, कि इस क्रिया के उपरान्त महिलाओं में कामोत्तेजना समाप्त हो जाती है तथा शादी से पूर्व उसका कौमार्य पूरी तरह सुरक्षित रहता है। यह भी माना जाता है, कि विवाहोपरान्त भी सुन्नत वाली महिला में कामोत्तेजना कम होती है तथा वह परपुरुष की ओर आकर्षित नहीं होती है तथा यौन सम्बन्ध नहीं बनाती। इस आधार पर स्पष्ट है, कि महिलाओं में सुन्नत की रस्म उसकी कामोत्तेजना समाप्त करने के लिए की जाती है, जबकि इसके ठीक विपरीत पुरुषों में सुन्नत उसकी कामवासना एवं कामशक्ति बढ़ाने के लिए की जाती है. यह स्पष्ट नहीं है कि सुन्नत की रस्म महिला और पुरुषों में से किस वर्ग में सर्वप्रथम प्रारम्भ हुई थी, परन्तु इतना तो तथ्यपूर्ण है, कि सुन्नत की रस्म का उद्देश्य महिला और पुरुषों में एक दूसरे के विपरीत है।

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की रिपोर्ट बताती है कि सन् 1990 में नाईजर और बुर्किना फासो में महिलाओं के सुन्नत की प्रथा पर चरणबद्ध तरीके से रोक लगाने तथा लोगों में इस प्रथा के विरुद्ध जागरूकता लाने के उद्देश्य से समितियों का गठन किया गया। गठित समितियों ने इस पर रोक लगाने हेतु अनेक योजनाएं बनायी तथा उन्हें लागू किया।

रिपोर्ट द्वारा यह भी अवगत कराया गया है कि अनेक देशों में महिलाओं में सुन्नत की प्रथा पर रोक लगाने हेतु कानून बनाये जा चुके हैं। घाना की अपराध दंड संहिता में 1994 में संशोधन करके सुन्नत की क्रिया का अंजाम देने वाले व्यक्ति को तीन साल सजा का प्रावधान किया गया है।

काहिरा में सितम्बर 1994 में जनसंख्या और विकास पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (आई०सी०पी०डी०) में पहली बार इस मुद्दे पर गम्भीरता के साथ विचार विमर्श किया गया। सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से इस अमानवीय प्रथा को समाप्त करने का आह्वान किया गया। सम्मेलन में कहा गया कि महिलाओं की सुन्नत मानवाधिकार के हनन का गम्भीर मामला है, यह महिलाओं के स्वास्थ्य और जीवन के लिए गम्भीर खतरा उत्पन्न कर देता है।

रिपोर्ट में कहा गया है, कि अनेक राष्ट्रों में सुन्नत की रस्म–रिवाज की जड़ें समाज में गहराई तक व्याप्त हैं, इसलिए इसे समाप्त करने के लिए व्यापक पैमाने पर शिक्षा और जागरूकता के कार्यक्रम चलाने होंगे।
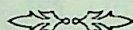
17
चाय के दुष्प्रभाव

सम्पूर्ण विश्व के सर्वाधिक लोकप्रिय पेय पदार्थों में जहाँ चाय का स्थान सबसे ऊपर है, वहीं चाय पीना स्वास्थ की दृष्टि से उचित नहीं है। परन्तु इसके विपरित पर्यावरण की दृष्टि से चाय का पौधा अत्यन्त लाभकारी बनस्पति भी है।

चाय के बारे में इतिहासकारों में गहरे मतभेद हैं। कुछेक इतिहासकारों का दावा है, कि ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्रों में चाय की खेती प्रारम्भ की जा चुकी थी। बहरहाल इतना तो निर्विवाद है, कि सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दी में यूरोपीय व्यापारियों ने ही चाय को दुनियाँ के कोने–कोने तक पहुँचाया।

प्रारम्भ में चाय विशेष पेय पदार्थ के रूप में महलों तक सीमित रहा परन्तु अठारहवीं शताब्दी के अस्सी के दशक के आसपास यह महलों से उतर कर झोपड़ियों में घुस आया। उन्नीसवीं शताब्दी तक तो चाय का प्रचलन इतना अधिक बढ़ गया था, कि बिट्रेन का एक भी घर इस लोकप्रिग पेय पदार्थ के सेवन से अछूता नहीं रह गया था। आज स्थिति यह है, कि पूरी दुनियाँ की नब्बे प्रतिशत से अधिक जनता इस पेय पदार्थ की गुलाम बन चुकी है। हमारे देश में ही चाय उत्पादन विदेशी मुद्रा अर्जित करने का एक प्रमुख साधन बनने का गौरव प्राप्त कर चुका है।

वनस्पति के रूप में चाय के पौधे की समुचित देखभाल करने तथा एक शताब्दी के अन्तराल में एक बार इसकी कौलर पुलिंग विधि से छटिंग की जाय, तो इसका पौधा कभी भी नहीं मरता है। इस तरह इसे दीर्घजीवी वनस्पति के रूप में भी जाना जाता है। चाय

की नर्सरी बनाने का सर्वोतम समय नवम्बर, दिसम्बर तथा पौधरोपण हेतु जुलाई अगस्त महिने उचित माने जाते हैं। चाय ढलानों एवं पहाड़ों में उगाई जाती है।

पर्यावरण संरक्षण एवं संबर्धन में चाय के पौधे का अपना विशिष्ट महत्व है। इसके गहरे पत्ते जहाँ वातावरण की वायु को शुद्ध रखने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, वहीं दूसरी ओर इसकी फैली जड़ें भूमि को बालुई बनाने से रोकती हैं।

दुनियाँ का यह सर्वाधिक लोकप्रिय पेय पदार्थ चाय का सेवन स्वास्थ के लिए अतीव हानिकारक माना जाता है। चाय पीने के उपरान्त शरीर में जो क्षणिक स्फूर्ति आती है, वह इसमें पाये जाने वाले निकोडीन के कारण होती है चाय में इसकी मात्रा दो प्रतिशत से छः प्रतिशत तक पायी जाती है। जो क्षणिक स्फूर्ति के बाद अपना दुष्प्रभाव उत्पन्न करना प्रारम्भ कर देती है।

चाय में टैनिन और कैफीन नाम उत्तेजक पदार्थ विद्यमान रहने से ही यह उत्तेजक पेय के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, इसमें पाये जाने वाले सुगन्धित वाष्पीय तेल के कारण ही इससे विशिष्ट सुगन्ध आती है, यह वाष्पीय तेल चाय को अधिक गर्म करने से वाष्प बनकर उड़ जाता है।

चाय में 3 प्रतिशत के लगभग पाया जाने वाला पदार्थ कैफीन एक अल्केलायाड है। यद्यपि यह स्वास्थ की दृष्टि से हानिकारक नहीं है पर इसके अधिक सेवन से नींद उड़ जाती है इसी अल्केलायाड के कारण चाय शरीर को ताजगी प्रदान करता है। एक कप चाय में लगभग 100 मिग्रा० कैफीन होता है।

चाय में 15 प्रतिशत से 20 प्रतिशत के आसपास पाया जाने वाला टैनिन शरीर को शक्ति एवं स्फूर्ति प्रदान करता है पर अधिक समय तक चाय पत्ती के पानी में रहने पर यह लाभदायक होने के स्थान पर हानिकारक हो जाता है।

उक्त दो प्रमुख पदार्थों के सिवाय चाय में थाइमिन, राइबोफ्लेबिन, नियासिन, फालिक एसिड, पेन्टोथिनिक एसिड, बायेटिन, इनोसिटाल सुगन्धित तेल आदि पाया जाता है। एक कप चाय में 110 मिलीग्राम कार्बनिक अम्ल, 50 मिग्रा० अमीनो अम्ल पाया जाता है।

चाय पर किये गये 'पर्यावरण विकास समिति' के अध्ययन बताते हैं, कि अधिक गर्म चाय पीने से शरीर की पाचन शक्ति कमजोर अथवा कम हो जाती है। अधिक मात्रा में चाय पीने वाले व्यक्ति के आमाशय की म्यूकस परत पर टैनिन की परत दर परत जम जाती है, जिससे गैस्ट्राइटिस हो जाता है। कुछेक मामलों में गैस्ट्राइटिस पेप्टिक अल्सर में परिवर्तित हो जाता है। समिति ने इसे, काम वासना बढ़ाने वाला, वीर्यक्षरण एवं पुरुषार्थ को हानि पहुँचाने तथा कामशक्ति के नाशक के रूप में भी उद्‌घोषित किया है।

चाय सेवन से आँतों में जलन, यकृत में सूजन, चिड़चिड़ापन अभूख–अनिद्रा, वीर्य–क्षय व पतला हो जाना, शीघ्र पतन, काम–वासना का बढ़ना, हाथ–पाँवों में कम्पन, नपुंशकता, सिर चकराना, आदि विकार एवं व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। इसके सेवन से मानसिक रोगों का आक्रमण, उदासी, कुण्ठा, निराशा, हताशा, आदि की भी उत्पत्ति होती है।

अमेरिका के हेल्थ सेन्टर ने अमेरिका में संयुक्त परिवारों के विखराव का प्रमुख कारण चाय पीना बताया है। पाँच से दस वर्ष के बीच बच्चों में लगी चाय की लत किशोरावस्था में पहुँचने पूर्व ही अपना रंग दिखाना प्रारम्भ कर देती है। उक्त सेन्टर ने अमेरिका में नाबालिग लड़के– लड़कियों के पनपते अवैध शारीरिक सम्बन्धों की प्रमुख जड़ ही चाय को माना है।

चाय की लत पड़ने से पचास से अस्सी प्रतिशत बच्चों का मानसिक एवं बौद्धिक विकास अवरूद्ध हो रहा है, जो कि एक चिन्ताजनक विषय है। यद्यपि चाय के हरे पत्तों में कैंसर तथा कई अन्य रोगों के अवरोधी गुण पाये जाते हैं। वहीं पेय पदार्थ के रूप में अधिक उपयोग करने पर यह स्वास्थ के लिए हानिकारक भी है।
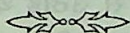
18

दुग्ध चूर्ण के दुष्प्रभाव

दुनियाँ के जघन्यतम हत्यारे दुग्ध चूर्ण अथवा पाउडर के दूध के बारे में यदि यह कहा जाय कि यह क्रूरतम तथा खतरनाक हत्यारा अब तक करोड़ों मानवों की हत्याएं कर चुका है, तो सहज ही कोई भी इस बात पर विश्वास नहीं कर पायेगा, पर यह एक कटु हकीकत है। परन्तु इसके विपरीत दुनियाँ के अधिसंख्य देश इसका निश्चिंत होकर उपयोग एवं उपभोग कर रहे हैं, जो एक अत्यन्त चिन्तनीय विषय है।

पाउडर का दूध, पाउडर तथा तरल पदार्थ दोनों रूपों में बिकता है 'पर्यावरण विकास समिति' की एक रिपोर्ट के आधार पर इसके प्रयोग का आलम यह है कि इस जहर का निर्धन परिवारों में, साठ से अस्सी प्रतिशत, मध्यमवर्गीय परिवारों में अस्सी से नब्बे प्रतिशत तथा सम्पन्न परिवारों में चालीस से साठ प्रतिशत से अधिक परिवारों में इसका प्रचलन है।

बीसवीं शताब्दी के अस्सी दशक में जेनेवा में हुए विश्व स्वास्थ संगठन के सम्मेलन में दुग्ध चूर्ण के बारे में व्यापक चर्चा हुई थी, जिसमें विश्व के अनेक राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने इसके हानिकारक प्रभावों को दृष्टिगत रखते हुए इसकी बिक्री पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने की माँग अत्यन्त जोर-शोर से उठाई थी। तब एक बार ऐसा लगने लगा था, कि शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय दुग्ध कम्पनियों से सम्भवतया अब विश्व समाज को राहत मिल जायेगी, परन्तु दुर्भाग्य से ऐसा कुछ हो नहीं पाया। दुग्ध पाउडर उत्पाद पर चर्चा ने उस समय जितना जोर पकड़ा था, उससे भी तीव्र वेग से उस पर प्रतिबन्ध की

धारणा मुँह के बल गिर पड़ी थी। विद्रोह के स्वर मात्र कागजी कार्यवाही बनकर रह गये। भारत क्या विश्व का कोई देश भी प्रतिबन्ध पर अमल नहीं कर पाया। जिससे स्पष्ट हो गया कि विश्व के सम्पूर्ण राष्ट्र महाबली पूँजीपति बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पंजों से आजाद नहीं है। यहाँ पर यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि उक्त अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भारत की तत्कालीन प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाँधी ने भी दुग्धचूर्ण पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने हेतु प्रभावशाली ढंग से खूब शानदार भाषण दिया था।

श्रीमती गाँधी के उक्त सम्मेलन में दिये गये प्रभावपूर्ण एवं आकर्षक भाषण से तब ऐसा लगने लगा था कि सम्भवतया भारत इस मीठे जहर पर प्रतिबंध लगाने में अग्रपंक्ति में अपना नाम दर्ज करेगा, परन्तु उसके बाद आज तक हालात दिन–प्रतिदिन बद से बदतर होते चले गये और आज स्थिति यह है कि दुग्ध पाउडर का यह जहर घर–घर, गाँव–गाँव तक पहुँच चुका है। हमारे देश के निर्धन से लेकर पूँजीपति तक बेधड़क इस जहर का उपभोग दर उपयोग, बिना इसके घातक परिणामों को जाने बिना, निश्चिन्तता से करते आ रहे हैं।

इस जहर के प्रचार–प्रसार का आलम यह है कि अब तो दुग्ध पाउडर के डिब्बे तथा बोतलें, जीवन बाँटने वाली दवाओं की दुकानों एवम् स्टोरों पर भी करीने से सजायी दिखाई देती हैं। भ्र.नक प्रचार–प्रसार एवं विज्ञापनों के कारण अधिसंख्य पढ़ी–लिखी, सुसंस्कृत माताएं पौष्टिकता के नाम पर अनजाने ही इस जहर को अपने मासूम बच्चों को पिला रही हैं।

बोतल अथवा डिब्बे के तरल दूध तथा दुग्ध पाउडर से अनेकों घातक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। इसके सेवन से होने वाली सबसे घातक, भयानक एवं जानलेवा बीमारी अतिसार के नाम से जानी जाती हैं। अतिसार की बीमारी को यदि कुपोषण मिल जाये तो यह महामारी से भी खतरनाक स्वरूप धारण कर लेती है। बड़ों की अपेक्षाकृत्त यह बीमारी छोटे बच्चों को अधिक होती है।

अतिसार की बीमारी के प्रमुख लक्षण हैं,बार–बार कै होना, कोरी पीड़ाजनक उल्टियाँ, दस्त लगना अथवा बेहोश हो जाना आदि। यह बीमारी अत्यन्त घातक होती है। बच्चों में इस तरह के लक्षण पाये

जाने पर, तत्क्षण विना देर किये, गिलास भर पानी में चार चम्मच चीनी तथा एक चम्मच नमक औटाकर उल्टी अथवा दस्त के बाद अतिसार पीड़ित बच्चे को पिलाते रहने पर उसे मौत के मुँह से बचाया जा सकता। चावल के माँड में नमक मिलाकर पिलाने पर भी इस रोग से ग्रस्त बच्चे को आराम मिलता है। अतिसार व्याधि पीड़ित बच्चे को अकाल मृत्यु से बचाने की यह अचूक विधि है।

अतिसार नामक इस जानलेवा बीमारी से पूरे विश्व में प्रतिवर्ष दो करोड़ से अधिक बच्चे काल के ग्रास बन जाते हैं। इस आधार पर स्पष्ट है कि दुग्धचूर्ण विश्व का एक क्रूरतम हत्यारा है। दुनियाँ के राष्ट्र बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के जकड़न में इस तरह जकड़े हैं कि वे इस पर प्रतिबन्ध लगाना तो दूर इस मीठे जहर के घातक परिणामों के बारे में आम जनता को भनक भी नहीं लगने देते, जिस कारण इससे मृत्यु का ताण्डव अनवरत रूप से चलता आ रहा है।

पर्यावरण विकास समिति के अध्ययन के अनुसार. बोतल का दूध अथवा दुग्ध पाउडर बच्चों के लिए ही नहीं हर उम्र के स्त्री–पुरूष के लिए भी अत्यन्त घातक होता है, क्योंकि इसके सेवन से पेट खराब रहता है, जिससे पेट में कब्ज बनती है। यह सभी जानते हैं कि कब्ज ही अनेकों ब्याधियों की जड़ है। इसके अलावा इस दुग्धचूर्ण के सेवन से,अच्छी तरह पाखाना न होना अथवा बार–बार पाखाने जाना, दस्त लगना सिर चकराना, हाथ–पाँवों में कम्पन, बेचैनी, बदहजमी, व्यर्थ की थकान रहना, आदि लक्षण भी पाये जाते हैं।

दुग्ध कम्पनियों की कार्यक्षमता के आगे विवश एवं लाचार दुनियाँ के राष्ट्र यदि दुग्धचूर्ण बनाम मीठे जहर से यदि विश्व को निजात दिला पाने में अक्षम हो गये हों तो इस स्थिति में आम जनता को इस क्रूरतम जघन्य–हत्यारे का उपयोग बन्द कर देना चाहिए तभी इस दैत्य से छुटकारा पाया जा सकता है। अन्यथा यह अपना खूनी पंजा इसी तरह गढ़ाते हुए आगे बढ़ता रहेगा।
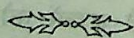
19

तम्बाकू के दुष्प्रभाव

तम्बाकू मुख्यत: दो रूपों में प्रयुक्त किया है, या तो यह खैनी, गुटका, सुर्ती के रूप में खाया जाता है या फिर बीड़ी–सिगरेट के धूम्रपान के रूप में लिया जाता है। तम्बाकू का किसी भी रूप में प्रयोग किया जाना स्वास्थ की दृष्टि से अत्यन्त हानिकारक तथा खतरनाक है।

तम्बाकू में पाये जाने वाले तीन सौ के लगभग यौगिकों में तैंतीस प्रकार के यौगिक अत्यन्त भयानक एवं जहरीले जहर के रूप में विद्यमान रहते हैं। इसमें भयानक कालकूट विष पाया जाता है, इसका नशा सेवन, शराब, भांग, गाँजा, चरस, धतूरे, अफीम के सेवन से भी भयानक है क्योंकि तम्बाकू में पाये जाने वाले विष मानव शरीर में पहुँचकर धीरे–धीरे अपना प्रभाव छोड़ते जाते हैं और अन्तत: मानव के जीवन–हरण में अपनी अहम् भूमिका निभाते हैं। इसे पदार्थ अथवा धूम्रपान दोनों में से किसी भी रूप में ग्रहण करने पर यह मानव शरीर को व्याधिग्रस्त एवं खोखला बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर देता है।

तम्बाकू में पाये जाने वाले विषतत्व इतने अधिक भयानक होते हैं कि इसके पानी की कुछ बूँदें सर्प के मुँह पर डालने पर उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है। इसके अर्क की एक–बूँद कुत्ते और बिल्ली के एक क्षण में प्राण हर लेती है। हुक्के में भरकर एक बार पिये जाने वाले तम्बाकू के विषैले सत से सोलह चूहों, तीन कुत्तों तथा एक व्यक्ति की तत्क्षण जान जा सकती है।

तम्बाकू की घातकता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि हमारे पड़ोसी देश चीन में लोग आत्महत्या करने पर तम्बाकू

की कीचयुक्त नारियल का पानी पीकर भगवान को प्यारे हो जाते हैं। चीन में आत्महत्या का यह तरीका काफी पुराना है।

अमेरिका के आदिवासी लोग काफी पूर्व से तम्बाकू का प्रयोग अपने शिकार व आत्मरक्षा के लिए करते आ रहे हैं। वे तम्बाकू के पत्तों का अर्क निकालकर उसे अपने तीरों के फलों पर लगाकर दुश्मन अथवा शिकार पर वार करते थे। तम्बाकू के अर्क से सना यह तीर जिस भी प्राणी को लगता, वह तत्काल अपना प्राण त्याग देता था।

तम्बाकू का धुँआ जीवमात्र के लिए ही नहीं बल्कि बनस्पतियों के लिए भी अत्यन्त घातक होता है। इसके धुंए के प्रभाव से वनस्पतियाँ झुलस जाती हैं अथवा मर जाती हैं।

हमारे ही देश के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी कान में कनखजूरे अथवा अन्य कीड़ा घुस जाने पर, मवेशियों में कीड़े पड़ जाने पर लोग चिलम (नारियल) के तम्बाकू के कीचयुक्त पानी को डालकर कीड़ों अथवा कनखजूरे से निजात पाते हैं। यह विधि तत्काल प्रभावकारी एवं तत्क्षण निजात देने वाली है, क्योंकि यह पानी पड़ते ही बिना एक पल विलम्ब किए कीड़े की जीवन लीला समाप्त हो जाती है।

तम्बाकू का प्रयोग भारतवर्ष में चौदहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर आज विकराल रूप धारण कर चुका है। सर्वप्रथम अमेरिकी भारतीयों ने धूम्रपान प्रारम्भ किया। यों तो सर्वप्रथम तम्बाकू का सेवन प्यास बुझाने हेतु किया गया था। तपश्चात् भारतीय लोग तम्बाकू की पत्तियों का प्रयोग दाँतों को सफेद करने के लिए करने लगे थे। सिगरेट का प्रचलन, सबसे पहले अठारहवीं शताब्दी में ब्राजील में प्रारम्भ हुआ था।

तम्बाकू के धुए में चार हजार से भी अधिक स्वास्थ की दृष्टि से हानिकारक रसायानिक पदार्थ पाये जाते हैं, जिनमें से तैतीस विषों को जानलेवा कहा जा सकता है।

तम्बाकू में पाये जाने वाले अत्यन्त घातक इन तैतीस विषों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है–

निकोडीन तम्बाकू में पाया जाने वाला सबसे भयानक एवं खतरनाक विष है। तम्बाकू में एक प्रतिशत से लेकर तीन प्रतिशत तक निकोडीन पाया जाता है।

सिगरेट की कश लेने पर उसमें पाये जाने वाले निकोडीन का अस्सी प्रतिशत भाग सीधे श्वास नली में पहुँचता है। सिगरेट का एक पैकेट रोज पीने वाले व्यक्ति के, मात्र एक सप्ताह में चार सौ मिलीग्राम निकोडीन विष, शरीर में पहुँच जाता है।

मात्र डेढ़ ग्रेन शुद्ध निकोडीन, एक स्वस्थ युवा व्यक्ति को मौत के मुंह में धकेलने के लिए पर्याप्त होता है। एक किलो तम्बाकू में आठ सौ से दस सौ ग्रेन के लगभग निकोडीन विष पाया जाता है। जिससे छः सात सौ व्यक्तियों की सहजता से जान ली जा सकती है।

प्रथम बार तम्बाकू सेवन अथवा सिगरेट पीने धूम्रपान करने वाले व्यक्ति के शरीर में कंपकंपी छूटती है, दिल तेजी से धड़कता है, जी मितलाता है और सिर में चक्कर आने लगता है। उल्टियाँ भी हो सकती हैं तथा शरीर से ठण्डा पसीना भी छूट सकता है।

एक सिगरेट में सामान्यतया एक ग्रेन तम्बाकू होता है, जिसमें ढाई से चार मिलीग्राम निकोडीन की मात्रा विद्यमान रहती है। निकोडीन शरीर के रक्त के दबाव, रक्तचाप में वृद्धि करता है। दो–तीन सिगरेट पीने के बाद रक्त का दबाव दस से पच्चीस प्वाइंट तक बढ़ जाता है।

निकोडीन जहाँ रक्त को दूषित करता है वहीं दूसरी ओर यह शरीर की अस्थियों तथा अस्थि–रन्जुओं को भी कमजोर कर देता हैं। वीर्य को पतला कर यौन शक्ति में ह्रास करते हुये व्यक्ति को नपुंसकता की ओर ले जाता है। धूम्रपान से शरीर में पहुँचने वाले निकोडीन से फेफड़े क्षति ग्रस्त होकर, सूखी खाँसी तथा टी०वी० को आमन्त्रित करते हैं, वहीं दूसरी ओर सुर्ती अथवा अन्य रूपों में इसके सेवन से मुँह–ग्रास नलिका–आमाशय–छोटी–बड़ी आँत तथा पाकस्थली क्षति ग्रस्त होती है, जिससे कैन्सर हो सकता है।

निकोडीन आमाशय को प्रभावित कर मतली की स्थिति उत्पन्न करता है तथा हाथ–पाँवों में अस्थिरता एवं कम्पन पैदा करता है। निकोडीन से कर्णरन्ध्र प्रभावित होकर संवेदनहीन होते जाते हैं तथा रक्तप्रवाह में व्यवधान उत्पन्न करने से इससे दृष्टि कमजोर तथा धुँधली होती जाती है।

तम्बाकू का सेवन करने वाली गर्भवती महिलाओं के पेट में पल

रहे बच्चे के लिए भी निकोडीन अत्यन्त घातक होता है, इससे गर्भाशय में पल रहे बच्चे का शारीरिक एवं बौद्धिक विकास अवरूद्ध हो जाता है, जिससे कभी–कभार बच्चे विकृत भी हो जाते हैं अथवा मर भी जाते हैं। इसका सेवन करने वाली महिलाओं के दूध में भी निकोडीन की मात्रा मौजूद रहती है।

निकोडीन से पाचन अंगों का आकुंचन बुरी तरह प्रभावित हो जाता है, जिससे अमाशय व आँतों में पहुँचे खाद्य पदार्थ सड़ने लग जाते हैं, और मलाशय भी क्षतिग्रस्त हो जाता है।

निकोडीन, जो कि पोटेशियम साइनाइड जैसा ही तीव्र विष है। शरीर की त्वचा के लिए भी अत्यधिक हानिकारक होता हैं। तम्बाकू सेवन करने वाले पच्चीस प्रतिशत लोगों की त्वचा में रक्त–प्रवाह इतना कम हो जाता है कि उनकी त्वचा का तापमान 4 डिग्री कम हो जाता है, क्योंकि निकोडीन के प्रभाव से त्वचा के रक्तकोष सिकुड़ जाते हैं। समय से पूर्व त्वचा में झुर्रियां पड़ने लगती है। जिससे व्यक्ति की उम्र दुगुनी लगती है।

इसी प्रकार निकोटीन ह्दय के लिए भी अत्यन्त घातक सिद्ध होता है, इससे ह्दय के रक्त कोषों में सिकुड़न आने लगती है, और रक्त स्राव एवं रक्तचाप बाधित होने लगता है, शिराएं एवं धमनियां भी बाधित होने लगती हैं। ह्दय की मांसपेशियों में रक्त–प्रवाह तथा ह्दय की स्वाभाविक क्रिया में बाधा उपस्थित होने से ह्दय रोगों का आक्रमण प्रारम्भ हो जाता है। ह्दयगति रूककर होने वाली मृत्यु के अधिसंख्य मामलों का मुख्य कारक यही निकोडीन होता है।

पिराडीन बेसेस तम्बाकू में पाया जाने वाला एक अन्य जहर है, इससे आँतों में खुश्की तथा स्वस्थ पेट में कब्जियत हो जाती है तथा पाचन तन्त्र पूरी तरह प्रभावित हो जाता है।

एकरोलीन विष शरीर के स्नायु कोषों और मस्तिष्क के तन्तुओं का निःपतन और विघटन करता है। जिससे रक्त दूषित होता रहता है, तथा इससे मनुष्य के सरल स्वभाव में भारी परिवर्तन आना प्रारम्भ होता है तथा मनुष्य चिड़चिड़ा हो जाता है।

कोलीडीन तम्बाकू में पाया जाने वाला वह विष है, जिससे सिर घूमता है और चक्कर आने प्रारम्भ हो जाते हैं। यह एक प्रकार का जहरीला क्षार है, जिससे स्नायु दुर्बलताओं से सम्बन्धित रोग होते

हैं।

प्रूसिक एसिड नामक अम्ल भी तम्बाकू में पाया जाता है, जो सिरदर्द, मतली, सिर में भारीपन, चक्कर आने जैसे मानसिक व शारीरिक कमजोरियों का जनक होता है। यह विष मानव मात्र के ज्ञान तन्त्र को बेहद उत्तेजित कर उसकी कार्य क्षमता पर बेहद खतरनाक ढंग से आघात पहुंचाते रहता है। इसी एसिड के कारण व्यक्ति में आलस्य का प्रार्दुभाव होता है।

अमोनिया का प्रभाव मुख, जीभ, जिगर पर सर्वाधिक पड़ता है। इसके कारण जीभ मोटी, खुश्क, खुरदुरी तथा स्वादरहित हो जाती है, क्योंकि यह लार ग्रन्थियों को बुरी तरह प्रभावित करता है। इस विष की अधिकता से गला खुश्क रहता है, जिससे प्यास बढ़ जाती है तथा बार बार मुख सूखने की शिकायत रहती है। यह शरीर के कोषों को अवरूद्ध कर रक्त को विषाक्त क़र देता है।

पाईरीन तम्बाकू में पाया जाने वाला अत्यधिक विषैला एवं घातक है। यह कैन्सर की बीमारी उत्पन्न करने वाला एक भयानक विष है। चूहों पर इसका लेप करने का सभी को कैन्सर हो गया था।

फुरफुरल नामक एक अन्य विष भी तम्बाकू में विद्यमान रहता है जो सामान्य अल्कोहल से पचास गुना अधिक विषैला होता है। शरीर में इसकी अधिक मात्रा पहुंचने पर यह जहर पुट्ठों तथा स्नायुओं में भारी अवरोध पैदा करता है, जिससे श्वासांगों की पेशियों पर फालिज गिर जाता है, जिससे वे अपना स्वाभाविक काम करना बन्द कर देते हैं। इसके कुप्रभाव से हृदयरोग तथा कैन्सर की बीमारी उत्पन्न होती है। इसकी अल्पमात्रा भी शरीर में जलन, कम्पन तथा घबराहट पैदा कर स्नायुओं हृदय तथा रक्त प्रवाह की गति में अवरोध पैदा करती है।

राजोलिन नामक विष भी एक खतरनाक विष है जिसका शरीर पर प्रभाव एकरोलीन के समान होता है।

कार्बोलिक एसिड जो तम्बाकू में पाया जाता है, उसे कोयले के तेजाब के रूप में भी जाना जाता है। यह एसिड मस्तिष्क के लिए अत्यन्त घातक होता है, जो मस्तिष्क की कार्यप्रणाली को बुरी तरह प्रभावित करता है। इससे ज्ञान तन्तुओं की समय से पूर्व मृत्यु

होनी प्रारम्भ हो जाती है। स्मरणशक्ति का ह्रास हो जाना!, सिर दर्द, अनिद्रा, बेचैनी इसके प्रमुख लक्षण हैं। इससे मस्तिष्क सम्बन्धी अन्य भी अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

पोलोनियम विष तम्बाकू में सर्वाधिक मात्रा में विद्यमान रहता है, इसकी मात्रा अस्सी प्रतिशत तक पायी जाती है। यह विष धीरे धीरे मानव के फेफड़ों में जमा होता जाता है, जो फेफड़ों को क्षतिग्रस्त कर धीरे–धीरे गलाना प्रारम्भ करता है, जिससे टी०वी० तथा कैन्सर की बीमारी हो जाती है। फेफड़ों के कैन्सर में प्रमुखतया इसी तत्व का प्रमुख हाथ रहता है। इससे श्वास नलिकाएं भी क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। यह धूमपान के धुएं में पर्याप्त मात्रा में सक्रिय तत्व के रूप में विद्यमान रहता है।

रेडियम तम्बाकू में पाया जाने वाला एक और खतरनाक विषैला तत्व है। जो कोमल पत्तों से बनाये गये खाने वाले तम्बाकू और सिगरेट में बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है। यह फेफड़ों, गले, श्वास नलिका एवं मुंह के कैन्सर का एक प्रमुख कारक होता है।

कार्बन मोनोआक्साइड आक्साइड गैस तम्बाकू के धुंए में पायी जाने वाली एक खतरनाक कोयले की गैस है। एक किलो तम्बाकू के धुएं में से अस्सी हजार घन सेमी० से अधिक परिमाण में यह गैस पायी जाती है। यह भयंकर विषैली गैस धूम्रपान करने वाले व्यक्ति तथा धूम्रपान करने वाले व्यक्ति के आस–पास रहने वाले लोगों के फेफड़ों में पहुंचकर रक्त की लाल कणिकाओं (हिमोग्लोबीन) को नष्ट करना प्रारम्भ कर देती है। यह रक्त में हीमोग्लोबिन से मिलकर कार्बोक्सी हिमोग्लोबिन बनाती है। मात्र एक सिगरेट का धुँआ लाल रक्त कणिकाओं की ओषजन बहन शक्ति को 96 प्रतिशत से घटाकर 85 प्रतिशत तक कर देता है। इसी दमघोटू गैस के कारण लगातार धूम्रपान करने वाले व्यक्ति (चेन स्मौकर) के लालकणों के ओषजन वहन शक्ति का प्रतिशत घटकर 74 प्रतिशत तक नीचे गिर आता है। ऐसे व्यक्ति की सांसें हल्की हो जाती हैं और उसमें तीव्रता आ जाती है, जिसके परिणामस्वरूप हृदय की घड़कन असाधारण रूप से तीव्र हो जाती है, यह तत्व शरीर में ऐंठन का एक प्रमुख कारण भी बनता है, इससे ठण्डा पसीना आने लगता है तथा नेत्रों की पुतलिया फैलने लगती हैं, और व्यक्ति अचेतनावस्था की स्थिति

तक पहुंच जाता है। इस गैस से अक्सर पक्षाघात होते देखा गया है, दमा हृदयरोग तथा नेत्र विकार का यह प्रमुख कारक है।

मार्श गैस धूम्रपान से ग्रहण की जाने वाली एक अन्य अत्यधिक खतरनाक गैस होती है, जो प्रमुखतया मनुष्य के वीर्य के लिए अत्यन्त घातक होती है। यह वीर्य बनने की प्रक्रिया को तहस नहस करने का कार्य करती है। वीर्य का पतला हो जाना, काम शक्ति का ह्रास होकर नपुंसकता की स्थिति में पहुंच जाना, शीघ्र पतन, जननांगों में जलन इसके घातक परिणामों के फल हैं।

साइनोजोन तम्बाकू में पाया जाने वाला वह विषैला तत्व है, जो रक्त को दूषित करता है। यह रक्त कणिकाओं की क्षमताओं को नष्ट कर उन्हें पंगु बनाने का कार्य करता है। इस के कारण रक्त कणों की रोगों से लड़ने की क्षमता में अवरोध उत्पन्न होता है, जिससे तम्बाकू सेवन करने वाले व्यक्ति का शरीर अनेक प्रकार की व्याधियों का घर बन जाता है।

कार्बन-डाई-आक्साइड धूम्रपान से ग्रहण की जाने वाली एक अन्य गैस है, जो मुख्य रूप से श्वास–प्रक्रिया व रक्त को प्रभावित करती है। इससे हृदय तथा फेफड़े खराब हो जाते हैं।

कोल्टार नामक एक अन्य खतरनाक तत्व तम्बाकू तथा विशेषतः सिगरेट में प्रयुक्त होने वाले कागज में बहुतायत पाया जाता है। यह विष मुख–कंठ, श्वास नली तथा आमाशय की श्लैष्मिकता को उदीप्त करता है, जो कैन्सर उत्पन्न करने वाला उपदाहक होता है। इसी विषैले तत्व के कारण धूम्रपान करने पर तुरन्त खांसी आती है। जो बाद में भयानक रूप से बढ़ जाती है। प्रतिदिन दो पैकेट सिगरेट पीने वाला व्यक्ति मात्र चार–पांच वर्ष की अवधि में धुएं के माध्यम से आठ क्वार्ट्ज कैन्सरोत्पादक कोल्टार विष तत्व को ग्रहण कर लेता है। इस तत्व से टी०वी०, दमा, काली खांसी तथा श्वास की बीमारी हो जाना साधारण सी बात है।

संखिया तम्बाकू में पाया जाने वाला एक और खतरनाक जहरीला विष है, जिसे तम्बाकू तैयार करने में प्रयुक्त किया जाता है। यह तो सर्वमान्य है कि संखिया कैन्सर उत्पन्न करने वाला एक प्रमुख घटक है। सिगरेट में प्रयुक्त किये जाने वाले संखिया विष का अनुपात डरावना है, क्योंकि तम्बाकू को अधिक नशीला बनाने

हेतु अब इसकी मात्रा का अनुपात काफी बढ़ा दिया गया है। जिस तरह इसका अनुपात बढ़ा है, उसी तरह धूम्रपान से होने वाले कैन्सर का अनुपात भी दस गुने से अधिक बढ़ गया है। यह विषैला तत्व धूम्रपान करने वाले व्यक्ति तथा उसके आसपास रहने वाले व्यक्ति को भी उपहारस्वरूप प्राप्त हो जाता है।

कृमिनाशक घोल तथा तम्बाकू में मिलाये जाने वाले अन्य कई जहरीले तत्व कई भयानक विष तत्वों के रूप में विद्यमान रहते हैं। जो स्वास्थ के लिए अत्यधिक हानिकारक होते हैं। खेतों में उगे तम्बाकू को कृमियों से बचाने हेतु जो कीटनाशकों के खतरनाक विषैले घोल, तम्बाकू में छिड़के जाते हैं वे, तम्बाकू के पत्तों के साथ निर्मित तम्बाकू में पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। इसके सिवाय तम्बाकू को अधिक नशीला बनाने हेतु, बीड़ी, सिगरेट, खैनी, गुटका, तम्बाकू में इसकी निर्माती कम्पनियाँ, अनेक प्रकार के जहरों–विषों को मिलाती हैं, जिसमें अफीम की बोकली, छिपकली, मदार के पत्ते, जहरीले धतूरे के बीजों तक का प्रयोग होने लगा है। तम्बाकू वैसे ही स्वास्थ एवं मानव जीवन के लिए मारक एवं अत्यन्त घातक होता है, फिर उसमें इस प्रकार के खतरनाक जहरीले तत्वों की मिलावट से वह मनुष्य को मृत्युद्वार तक पहुँचाने में और भी सक्षम हो जाता है।

तम्बाकू में पाये जाने वाले अन्य प्रमुख विषैले तत्वों के नाम हैं – मैथिलामीन, सल्फरेड, हाइड्रोजन, पारबोलीन, कोरीडीन, लुटीडीन, रुबीडीन, विरिडोन, मोनोसाइनाइट्स, पायकोलीन, साइनाइट्स, पाइरोल, फार्मिक एल्डीहाइड, हाइड्रोसाइनिक एसिड तथा फेनोल्स–इसके सिवाय तम्बाकू में दो सौ सत्तर से भी अधिक और भी स्वास्थ के लिए हानिकारक तत्व पाये जाते हैं।

तम्बाकू सेवन मानव की अकाल मृत्यु का कारण ही नहीं बनता बल्कि जब तक वह जीवित रहता है, उसे व्याधियों से जकड़कर जीते जी मरे समान बना लेता है। इसका किसी भी रूप में सेवन स्वास्थ के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है।

धूम्रपान करने वाला व्यक्ति, अपना स्वास्थ तो समाप्त करता ही है साथ ही उन लोगों को भी उपहार स्वरूप विषैले तत्वों को बांटता फिरता है, जो धूम्रपान करते समय उसके आसपास रहते हैं।

बच्चों के आसपास धूम्रपान करना और भी घातक होता है। इससे बच्चों में धुएं से तत्काल होने वाली मौत (सिड्स) की अधिक सम्भावना होती है। सिड्स से एक माह से एक साल तक के बच्चों की मृत्यु सर्वाधिक होती है। धूम्रपान करने वाले माता तथा पिता के बच्चों की सिड्स से मौत होने का खतरा कई गुना और बढ़ जाता है। धूम्रपान करने वाली माताएं अपने गर्भस्थ शिशु को पैदा होने से पूर्व ही अनेकों व्याधियाँ उपहार में दे देती हैं।

धूम्रपान करने वाले नब्बे प्रतिशत लोगों की मृत्यु फेफड़े की बीमारी तथा कैन्सर से, पछत्तर प्रतिशत की क्रानिक बोन्काइटिस, पच्चीस प्रतिशत मौत कोरोनरी आरटीरियल बीमारी से होती है। कैन्सर के विभिन्न किस्मों, जैसे फेफड़ा, लेरेंजल, मुख ओसोफेजियल, एथरोसलेरीसिस, इसचेमियां व एरेथमिया, थोम्ब्रो एन्जिलाइटिस, आबलिटेसन्स, विभिन्न श्वसन रोग, क्रानिक ब्रोन्काइटिस, क्रानिक, श्वास लेने में तकलीफ, वर्धित रेसपिरेटरी इन्सफैक्शन, जिसमें निमोनिया और इन्फुलैंजा आदि हो जाता है, नूमोथोरेक्स, क्रानिक स्टोमेटाइटिस, लेरेंजिटिस गैसट्रिक और ड्यूडिनल, अल्सर, नियो–नेटालु मृत्यु, गर्भपात, विभिन्न प्रकार के डिपरेशन, विभिन्न प्रकार की आँखों की बीमारियां जैसे वर्धित इन्ट्राओकुलर टेंशन, तम्बाकू एम्बलिओपिया, रिडयूस्ट विज्जुअल एक्विट, उम्र कम होना, औषधि उपचार को शरीर द्वारा कम स्वीकार किया जाना, नशीली दवाओं की टाकसिटी घटनाएं आदि बीमारियां मुख्यतः तम्बाकू सेवन से होती है, बौडी फल्यूड का प्रमुख कारक भी धूम्रपान ही है। बौडी फल्यूड में जैवरसायनिक परिवर्तन होते हैं, जिसके कारण व्यक्ति कहीं अन्यत्र खोया सा रहता है और दुर्घटनाओं का शिकार बनता है।

बताया जाता है, एक सिगरेट पीने से व्यक्ति के जीवन के पाँच मिनट कम हो जाते हैं। इस प्रकार प्रतिदिन एक पैकेट (20 सिगरेट) सिगरेट पीने वाले व्यक्ति की उम्र 8-10 वर्ष निश्चित रूप से कम हो जाती है। तम्बाकू का सेवन करने वाले व्यक्ति में हृदय रोग, टी०वी० तथा कैन्सर की सम्भावनाएं कई गुना बढ़ जाती हैं।

तम्बाकू में पाया जाने वाला टार फेफड़े में जमकर फेफड़े का कैन्सर उत्पन्न करता है। तम्बाकू के जलने पर निकोटीन धुंए में

जाकर ''टार'' की छोटी–छोटी बूंदों से चिपक जाता है। यह फेफड़ों से मस्तिष्क में पहुंचने में मात्र 7 सेकन्ड का समय लेता है और रक्त वाहिनियों तथा तन्त्रिकाओं में पहुंचकर उन्हें अपंग करना प्रारम्भ कर देता है. इसी तरह कैडमियम फेफड़े की थैलियों को आघात पहुंचाकर उन्हें गुब्बारे की भांति फुला देता है। जिसे 'एमफाइजिमा' कहते हैं। तम्बाकू में धुंए में पायी जाने वाली जहरीली गैसें हाइड्रोजन सल्फाइड, अमोनिया, नाइट्रोजन डाई आक्साइड, हाइड्रोजन साइनाइड, बैन्जीन, फारमेल्डिहाइड शरीर को पंगु बना देते हैं।

निकोडीन तंत्रिका तन्त्र के प्लेजर केन्द्रों को उत्तेजित कर मस्तिष्क से एड्रीनलिन व अन्य रसायनों को निकाल कर हृदयगति को असामान्य गति से बढ़ा देती है। इस प्रक्रिया में रक्त के थक्के बनकर हृदय को आघात पहुंचाते हैं, जिस कारण हृदय की कोरोनरी धमनियों में सिकुड़न आ जाता है। धूम्रपान से शरीर की धमनियों में चर्बी जमा होना, ट्राईग्लिसराइड एवं वसा अम्लों की मात्रा बढ़ जाना, खून का थक्का बनना, धमनियों का सिकुड़ जाना, हानिकारक एल डी एल कोलेस्टराल बढ़ जाना जैसे परिवर्तन शरीर में दिखाई देते हैं।

धूम्रपान कोरोनरी हृदय रोग, हृदयाघात, दिल का दौरा, एनजाइना, श्वास प्रणाली का बार–बार संक्रमण रोग, ब्रोकाइंटिस, एमफाइजिमा, फेफड़ों व श्वास नली का कैन्सर, मुंह, गले, ध्वनिपेटी–मूत्राशय का कैन्सर, पेप्टिक अल्सर, वरजर्स रोग, हाथ–पैर सुन्न, ठण्डी व नीली पड़ना जैसी बीमारियों की जड़ है। तम्बाकू सेवन करने वाली गर्भवती महिलाओं के बच्चे का वजन कम होना, असमय या गर्भ में ही मृत्यु, गर्भपात हो जाना, शिशुओं में अपंगता, विकृत्तियां आदि लक्षण पाये जाते हैं।

धूम्रपान के बारे में अक्सर यह धारणा फैलायी गयी है कि फिल्टर युक्त सिगरेट पीने से धूम्रपान के दुष्प्रभाव शरीर पर नहीं पड़ते, यह धारणा बिल्कुल निराधार एवं निर्मूल है, क्योंकि फिल्टर युक्त सिगरेट पीने पर पहले के चार पांच कशों में धूम्रपान के घातक तत्वों की मात्रा कम होती है. क्योंकि ये तत्व फिल्टर में जमा होने लगते हैं। चार पांच कश के बाद जब शेष सिगरेट पीयी जाती है. तब फिर सारे विषैले तत्व धूम्रपान के धुएं के साथ बाहर निकलने लग जाते

हैं और ब्याज सहित लौट आते हैं क्योंकि आधी सिगरेट तक पहुंचने के बाद प्रारम्भिक चरण में फिल्टर में जमा हुए तत्व भी धुएं के साथ शरीर में पहुंचने प्रारम्भ हो जाते हैं, इसलिए धूम्रपान के सन्दर्भ में फिल्टर की धारणा झूठ के बुनियाद पर खड़ी है, हाँ ताजा पानी डाले चिलम–नारियल में हुक्के का तम्बाकू पीने पर सम्पूर्ण मात्रा में विषैले तत्व शरीर में नहीं जा पाते हैं क्योंकि उनकी कुछ मात्रा पानी में घुल जाती है, इस सन्दर्भ में यह आवश्यक है, कि हर बार नारियल का पानी बदल लिया जाय। आधी पी हुई सिगरेट अथवा बीड़ी को बाद में पीना स्वास्थ की दृष्टि से ताजे बीड़ी सिगरेट से भी अधिक खतरनाक होता है।

धूम्रपान के बारे में यह धारणा भी पूरी तरह निर्मूल एवं असत्य है कि तम्बाकू खाना धूम्रपान करने से कम घातक है, ऐसी धारणा इसलिए प्रचलित हुई कि परीक्षणों से सिद्ध हुआ कि सामान्य व्यक्ति पर धूम्रपान का तीव्र प्रभाव धूम्रपान करने के बाद सत्रह मिनट तक प्रभावी रहता है जबकि तम्बाकू खाने के सोलह मिनट बाद तक इसका प्रभाव बना रहता है लेकिन यह धारणा पूरी तरह भ्रामक है, वास्तविकता तो यह है कि धूम्रपान करने से तम्बाकू खाना और अधिक खतरनाक है। यह प्रमाणिक है कि तम्बाकू सेवन से शरीर में नाड़ी की गति और रक्तचाप दोनों बढ़कर असामान्य हो जाते हैं। एक बीड़ी अथवा सिगरेट पीने में जितना समय लगता है उससे पन्द्रह गुना या उससे अधिक समय तम्बाकू खाने में लगता है, जितनी देर तक तम्बाकू मुंह में रहता है उससे सोलह मिनट तक उसका दुष्प्रभाव बना रहता है जबकि धूम्रपान करने में समय काफी कम लगता है। फिर सबसे बड़ी बात यह है कि धूम्रपान करने पर तम्बाकू के काफी विषाक्त तत्व धुएं के साथ वातावरण में भी फैल जाते हैं जबकि तम्बाकू मुंह में डालने से खाने के समय तक उसके घातक तत्व सम्पूर्ण रूप से शरीर में प्रवेश करते चले जाते हैं, यही कारण है धूम्रपान करने से तम्बाकू खाना और भी अधिक स्वास्थ के लिए हानिकारक है।

तम्बाकू सेवन करने वाले व्यक्ति को धूम्रपान छोड़ना पहाड़ तोड़कर लाने के बराबर कठिन लगता है, इसका प्रमुख कारण तम्बाकू में पाया जाने वाला निकोडीन है, जो शरीर के रक्त में मिलकर व्यक्ति को इस हद तक गुलाम बना लेता है कि थोडी देर तम्बाकू सेवन

न करने की स्थिति में तम्बाकू का नशा करने वाले व्यक्ति के शरीर में निकोडीन की मात्रा घटने लग जाती है, जिससे वह व्यक्ति बेचैनी महसूस करता है, यही तलब उसे बार–बार तम्बाकू सेवन के लिए प्रेरित करती है। यही वह भी कारण है जिसके चलते व्यक्ति चाहकर भी धूम्रपान नहीं छोड़ पाता है।

तम्बाकू छोड़ने के लिए व्यक्ति में दृढ़ इच्छा शक्ति होनी चाहिए, जिसका मन मस्तिष्क पर पूरा नियन्त्रण हो। ऐसा दृढ़ इच्छा शक्ति वाला व्यक्ति तुरन्त एक ही झटके में धूम्रपान छोड़ सकता है।

धूम्रपान पर प्रयोग करने वाले वैज्ञानिकों ने पाया कि यदि तम्बाकू सेवन के आदी व्यक्ति के शरीर में निकोडीन अन्य माध्यमों से पहुंचा दी जाये तो वह व्यक्ति इस घातक लत से छुटकारा पा सकता है। इस बात को मध्यनजर रखते हुए वैज्ञानिकों ने इस लत के छुटकारा पाने की कुछ सफल विधियां भी खोज निकाली हैं।

प्रथम विधि के आधार पर निकोडीन युक्त वैण्ड एड (चिपकने वाली प्लास्टर पट्टी) का निर्माण किया गया, इस वैण्ड एड को शरीर के अंग से चिपकाना होता है, यह निकोडीन युक्त प्लास्टर पट्टी पूरे चौबीस घंटे तक शरीर को निकोडीन देती रहती है, चौबीस घंटे बाद फिर नयी पट्टी परिवर्तित करनी पड़ती है। इस प्लास्टर पट्टी में लगी निकोडीन त्वचा द्वारा धीरे–धीरे सोखी जाती है, रक्त को लगातार निकोडीन मिलते रहने के कारण व्यक्ति को तम्बाकू सेवन की इच्छा नहीं होती। पट्टियों में अलग–अलग मात्रा की निकोडीन मिलाई गयी होती है। प्रारम्भ में कुछ सप्ताह अधिक निकोडीन वाली वैण्ड एड पट्टी दी जाती है पर बाद में कम निकोडीन वाली पट्टी प्रयोग में लायी जाती है आखिरी समय में बहुत ही कम निकोडीन युक्त पट्टी प्रयुक्त की जाती है और अन्त में तम्बाकू के आदी व्यक्ति को निकोडीन युक्त पट्टी से भी सहजता से मुक्ति मिल जाती है।

दूसरी विधि के आधार पर तम्बाकू सेवन के आदी व्यक्ति को निकोडीन युक्त चुइंगम चबाने को दी जाती है। प्रारम्भ में निकोडीन युक्त इस चुइंगम की अधिक गोलियाँ दी जाती हैं, पर बाद में धीरे–धीरे गोलियों की मात्रा क्रम से घटाई जाती है और अन्त में व्यक्ति इस चुइंगम को भी छोड़ देता है।

उपरोक्त दोनों धूम्रपान छुड़ाने के साधन व विधियों के परिणाम,

लगभग सौ प्रतिशत खरे उतरे हैं। पट्टी अथवा चुइंगम के रूप में शरीर को निकोडीन दिये जाने की प्रक्रिया में तम्बाकू के आदी व्यक्ति को तम्बाकू सेवन की बिल्कुल भी इच्छा नहीं रहती है और न वह इनसे किसी भी प्रकार की शारीरिक व मानसिक तनाव अथवा थकान ही महसूस करता है।

दृढ़ इच्छा शक्ति विहीन तम्बाकू के नशेड़ियों को प्रचलित एवं प्रमाणित विधियों से तम्बाकू की लत से छुटकारा पाकर तम्बाकू रहित समाज के निर्माण में अपनी सहभागिता निभानी होगी तभी मानव जाति, तम्बाकू रूपी इस महादैत्य से छुटकारा पा सकेगी। जिन देशों में प्रचलित उक्त विधियां प्रचलन में नहीं हैं उन देशों को भी मानव कल्याण के लिए उक्त उपायों को अमल में लाने हेतु निकोडीन युक्त चुइंगम अथवा वैण्ड एड का निर्माण अथवा आयात के लिए समुचित कदम समय रहते उठा लेने चाहिए। तभी विदेशी पूंजी अथवा अधिक कर की आड़ में मानव जीवन से खेलने का यह कुचक्र समाप्त हो पायेगा।

1995 में एक अनुसन्धान से यह भी पता लगा है, कि बिना किसी बाह्य लक्षण के इससे आपकी आंखों की रोशनी भी जा सकती है। इस रोग को 'टोवैको एमाब्लियोपिया' कहा जाता है। इसमें आंखों में दर्द या और कोई असामान्यता विकसित नहीं होती। बस धीरे–धीरे आंखों की रोशनी कम होती जाती है। रोग का असर दोनों आंखों पर होता है, लेकिन जरूरी नहीं कि दोनों आंखों की रोशनी समान रूप से घटे। यह रोग ज्यादातर मध्यम या अधिक आयु के पुरुषों को होता है। खून वगैरह की जांच से भी रोग के बारे में कुछ पता नहीं चलता। डॉक्टरों ने देखा है, कि अगर इस रोग के बारे में जल्दी पता लग जाए तो रोगी को विटामिन–बी 12 की गोलियां खिलाने या इंजेक्शन देने से लाभ होता है। ज्यादा धूम्रपान करने वाले इस रोग की चपेट में जल्दी आ सकते हैं।
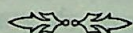
20

फूड प्वाइजनिंग के दुष्प्रभाव

भोजन जीवन के लिए एक अति आवश्यक पदार्थ है, सनातन धर्म में भोजन के बारे में "अन्न ब्रह्मा, रसो विष्णु, भुक्ता देवो महेश्वर" कहा गया है। भोजन कई कारणों से विषाक्त हो सकता है जो मानव जीवन व उसके स्वास्थ के लिए अत्यन्त घातक बन जाता है।

भोजन से बिगड़ने वाले स्वास्थ में "फूड प्वाइजनिंग" (विषाक्त भोजन) का महत्वपूर्ण योगदान है। विषाक्त भोजन के सेवन से अक्सर प्रारम्भिक चरण में उल्टियां अधिक होती हैं। इससे उल्टी और दस्त एक साथ भी प्रारम्भ हो सकते हैं। कई मामलों में उल्टी अथवा कै–दस्त के साथ पेट दर्द की भी शिकायत पायी जाती है।

विषाक्त भोजन के कारण आर्सेनिक रोगी को बेचैनी और घबराहट काफी बढ़ जाती है, इसमें रोगी को बार–बार लगातार प्यास लगती है। लेकिन रोगी एक बार में मुश्किल से मात्र एक ही घूंट पानी पी सकता है।

बैरेट्रम एल्ब के रोगी को ठण्डे पानी की प्यास लगती है, इसका रोगी एक ही बार में बहुत अधिक पानी पीने में सक्षम रहता है, इस तरह के रोगियों के रंगों में अकड़न भी पायी जाती है। परन्तु रोगियों में बैचेनी के लक्षण नहीं दिखाई देते हैं। जबकि कैम्फर के रोगी का शरीर नीला और ठण्डा पड़ने लगता है। वह गर्मी में राहत महसूस करता है। विषाक्त भोजन से स्वास्थ पर पड़ने वाले खतरनाक कारणों से रोगी की मृत्यु तक हो सकती है।

फूड प्वाइजनिंग का रोग मुख्यतः विषाक्त भोजन के प्रयोग से होता है। कभी कभार तो एक ही स्थान पर भोजन करने से

लोग इस बीमारी की चपेट में आते देखे गये हैं।

इस रोग के लक्षण विषाक्त भोजन करने के कुछ ही मिनटों से लेकर दो–दिन दो रात तक के समय तक प्रकट हो सकते हैं। फूड प्वाइजनिंग के प्रकट होने के लक्षणों के आधार पर इस मारक व्याधि का सहज ही पता लगाया जा सकता है। लगभग आधे घंटे की अवधि में प्रकट होने वाले लक्षणों से स्पष्ट है कि यह किसी केमिकल के कारण प्रारम्भ हुआ है।

दो घंटे से लेकर छः घंटे के भीतर प्रकट होने वाले 'फूड प्वाइजनिंग रोग' के लक्षण बताते हैं कि यह स्टेफलोकोकल जीवाणु के कारण हुआ है। इसमें उल्टी दस्त के साथ अक्सर पेट दर्द की भी शिकायत रहती है।

बारह घंटे से लेकर अड़चालीस घंटे के भीतर प्रकट होने वाले ''फूड प्वाइजनिंग'' के लक्षण स्पष्ट करते हैं कि यह रोग सालमोनेला ग्रुप के जीवाणु के कारण प्रकट हुआ है।

''फूड प्वाइजनिंग'' होने के अनेक कारण होते हैं, दूषित दूध तथा दूषित पानी के कारण भी यह रोग सम्भव है। इन्हें दूषित करने के अधिसंख्य मामलों में कैम्पाइलोबैक्टर जैजुनी नामक जीवाणु का प्रमुख हाथ होता है।

डिब्बा बन्द भोजन, मिठाई, बिस्कुट या अन्य खाद्य सामग्रियों में बरती गयी असावधानियों के कारण भी यह रोग हो जाता है। समयावधि पूर्ण कर चुका खाद्य पदार्थ, सीलन में रखा अथवा अशुद्ध पैक किया भोजन इस रोग का कारण बनता है, इससे जान जाने का खतरा भी बना रहता है।

ठीक तरह से न पकाया गया भोजन, खासतौर पर अधपके अण्डा, चिकन, माँस आदि भी इस रोग के कारण हो सकते हैं। बासी भोजन भी इसका एक प्रमुख कारण माना गया है। खासकर बासी चावल तो इस रोग के प्रमुख संवाहक हैं, क्योंकि बासी चावलों के अन्दर कीटाणु बहुत जल्दी पनपते हैं और भोजन को खाने योग्य नहीं छोड़ते हैं, इसलिए बासी चावलों के प्रयोग से तो खास तौर पर बचना ही चाहिए।

ऐसे रोगी जिनके हाथ में फोड़े निकले हैं, अथवा अन्य प्रकार

का कोई रोग हो तथा कुछ विशेष परिस्थितियों में ऐसे व्यक्ति जिसके नाखून बढ़े हों और वह गन्दगी अथवा विषाक्त पदार्थों से सम्बन्धित कार्य से जुड़ा हो, आदि स्थितियों में भी उस व्यक्ति द्वारा भोजन बनाने अथवा परोसने से भी फूड प्वाइजनिंग हो जाता है।

अनेक बार तो ऐसा भी देखा गया है कि होटल अथवा रेस्टोरेन्ट में कार्यरत कर्मचारी और रसोइए सालमोनेला नामक जीवाणु के संवाहक होते हैं, जिस कारण भोजन करने वालों को फूड प्वाइजनिंग इनके गन्दे हाथों से भोजन बनाने व परोसने के कारण हो जाता है, जबकि वे खुद इस रोग से बचे रहते हैं।

सड़ी गली सब्जी खाने, कच्चे अथवा खराब फल खाने के कारण भी कई बार यह रोग हो जाता है विशेषतः बच्चों को कच्चे अथवा सड़े–गले फल खाने से बचाना चाहिए, इन सब कारणों के अतिरिक्त भी अनेक कई अन्य कारण तथा कुछ अन्य कीटाणु भी होते हैं, जिसके कारण भी फूड प्वाइजनिंग होने की सम्भावना होती है।

यदि दुर्भाग्यवश कोई व्यक्ति फूड प्वाइजनिंग की चपेट में आ जाता है, उसे तुरन्त प्राथमिक घरेलू चिकित्सा सुविधा प्रदान कर डाक्टर के पास ले जाना चाहिए। प्राथमिक घरेलू चिकित्सा से आशय है कि रोगी को लगातार पेय पदार्थों का सेवन कराते रहना चाहिए, रोगी के शरीर में पानी की क़मी न हो इसलिए हो सके तो उसे जीवन रक्षक घोल पिलाना चाहिए। इस स्थिति में नमक का पानी तथा ग्लूकोज देना भी लाभकर होता है।

फूड प्वाइजनिंग से बचने हेतु भोजन बनाने में पूर्ण स्वच्छता बरतनी चाहिए, हाथ अच्छी तरह साफ किये हों। पानी की स्वच्छता पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए, जहां तक हो बासी भोजन से बचना चाहिए। स्वच्छ होटल में ही शुद्धता से बनाया गया ताजा भोजन लेना चाहिए।

बरसात के मौसम में जब पानी खराब होने की अधिक सम्भावना रहती है उस स्थिति में अथवा पानी दूषित होने की आशंका की स्थिति में पानी को उबालकर प्रयोग में लाना बेहतर होगा।

बन्द डिब्बों के भोजन प्रयोग करने से पूर्व समयावधि, गुणवत्ता

की परख अवश्य कर लेनी चाहिए, कच्चे अथवा सड़े-गले फलों के प्रयोग से बचा जाना चाहिए। भोजन, अण्डा, मांस, चिकन को सही ढंग से पका लेना चाहिए। मांस तथा चिकन प्रयोग करने से पूर्व अति आवश्यक है कि वह जिस मवेशी का मांस है, क्या वह स्वस्थ था अथवा उसकी समुचित डाक्टरी जांच की गयी थी? इसी प्रकार कहीं अण्डे से सड़ान्ध अथवा दुर्गन्ध तो नहीं आ रही है।

भोजन में प्रयुक्त अनाज, क्या किसी कारणों से विषाक्त तो नहीं रहा है। ये ही वे आवश्यक सावधानियां हैं, जिसे अपनाकर "फूड प्वाइजनिंग" से बचा जा सकता है।

21
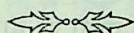
आयोडीन और स्वास्थ

लगभग आज से दो हजार साल से भी पूर्व लिखे अथर्ववेद में जिस 'गलगंड' की चर्चा की गई है सम्भवतया वह घैंघा रोग ही है। घैंघा प्रमुखतया आयोडीन की कमी से होने वाला रोग है, जो सदियों पहले से ही भारतवर्ष में जड़ जमाये हुए है, उदाहरण के लिए उक्त अथर्ववेद का सन्दर्भ लिया जा सकता है।

विभिन्न प्रकार के तत्वों से निर्मित मानव शरीर को अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्वों, कैल्शियम, लोहा, सोडियम, पोटेशियम, मैग्नैशियम, आयोडीन आदि की समुचित मात्रा की सख्त आवश्यकता होती है। इन सभी तत्वों का शरीर के लिए पृथक् पृथक् रूप से विशेष महत्त्व है। इन तत्वों का शरीर में समुचित मात्रा का होना, बच्चा–बूढ़ा यानि हर आयु के स्त्री–पुरुष के लिए अति आवश्यक है।

यह तो सभी जानते हैं, कि शरीर को क्रियाशील रखने व जीवित रहने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। शरीर को यह ऊर्जा उसमें निहित ईंधन के जलने से प्राप्त होती है। शरीर में उपलब्ध इस ईंधन को जलाने वाले प्रमुख पदार्थ को 'थाइराइड हारमोन' कहते हैं, जिसका निर्माण शरीर में विद्यमान 'थाइराइड ग्रन्थि' के द्वारा होता है।

थाइराइड हारमोन ही वास्तविक रूप में शरीर के प्रत्येक अंग प्रत्यंग को ऊर्जा देने वाला प्रमुख पदार्थ है, जो शरीर के विकास के लिए अति आवश्यक है। यह हारमोन विशेष रूप से मस्तिष्क एवं स्नायु तत्वों के विकास का प्रमुख घटक है। इस पदार्थ के जनक थाइराइड ग्रन्थि को अपनी कार्य–प्रणाली सुचारू रूप से दुरस्त रखने

हेतु मानव शरीर को प्रतिदिन लगभग 0.15 मिलीग्राम आयोडीन की आवश्यकता होती है।

आयोडीन के मुख्य स्रोत मछली, दूध, अंडा, पेयजल, वनस्पतियाँ आदि हैं। वैसे आयोडीन की अधिक मात्रा समुद्र में पायी जाने वाली मछलियों में सर्वाधिक रहती है, जिसका प्रमुख कारण है आयोडीन समुद्र से बनने वाली भाप, बादल, मानसून के कारण वर्षा के साथ पृथ्वी के सतह पर आ जाता है, बरसात में वर्षा के साथ सतही मिट्टी, जो कि आयोडीन युक्त होती है बहकर पुनः समुद्र में चली जाती है, जो मछलियों के माध्यम से पुनः लौट आती है।

आयोडीन की कमी से घातक थाइराइड रोग हो जाता है। नब्बे के दशक में भारत वर्ष में किये एक अध्ययन के अनुसार "देश की कुल प्रतिशत जनता के बीस–पच्चीस प्रतिशत से अधिक जनता को प्रतिदिन निर्धारित 0.15 मि०ग्रा० आयोडीन की मात्रा नहीं मिल पाती है तथा बारह से पन्द्रह प्रतिशत जनता आयोडीन की कमी से होने वाले विभिन्न रोगों से जूझ रही है। बंगला देश नेपाल व अन्य गरीब देशों की हालत इससे भी डरावनी है। 1994 में बंगलादेश में किये गये एक अध्ययन से ज्ञात हुआ, कि वहां प्रतिवर्ष 33000 गर्भस्थ तथा 41,000 नवजात शिशु आयोडीन की कमी से असमय मृत्यु मुख में चले जा रहे हैं। जबकि आयोडीन की कमी से होने वाली बीमारियों का आंकड़ा काफी ऊँचा एवं डरावना पाया गया।

थाइराइड रोग, काफी घातक एवं कष्टप्रद होता है, विशेषतः किशोरावस्था में थाइराइड की विकृत्ति बड़ी तेजी से उभरती है, लड़कों की अपेक्षा लड़कियां इस रोग से अधिक ग्रसित एवं पीड़ित होती हैं। स्वास्थ विशेषज्ञों के अनुसार लड़कियों में किशोरावस्था में तीव्र शारीरिक विकास के कारण शरीर में आयोडीन की कमी होने से थाइराइड ग्रन्थि पर अधिक जोर पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप उसमें शोथ की उत्पत्ति हो सकती है। शोथ होने की स्थिति में ग्रन्थि गौयटर के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

अनेक महिलाओं में थाइराइड की विकृत्ति गर्भावस्था के दौरान भी नजर आती है क्योंकि गर्भावस्था के दौरान गर्भवती महिला के साथ–साथ, गर्भ में पल रहे शिशु को भी आयोडीन की आवश्यकता होती हैं। आयोडीन की कमी से गर्भस्थ शिशु के ठीक ढंग से मस्तिष्क

का विकास नहीं हो पाता है।

थाइराइड पीड़ित महिला के पेट में देर तक गर्भ नहीं ठहर पाता है, उसे बार–बार गर्भस्राव होने की शिकायतें भी देखने को मिली हैं। इस बीमारी से ग्रस्त रोगी गर्भवती महिलाओं का समय से पूर्व ही प्रसव हो जाता है; ऐसे बच्चे शारीरिक व मानसिक रूप से विकलांग भी पाये गये हैं। थाइराइड के कारण शिशुओं में, सुनने, बोलने, खड़े होकर चलने की विकृत्तियां भी देखी गयी हैं।

थाइराइड रोग के विशेषज्ञों के अनुसार थाइराइड रोग तीन तरह का होता है, पहली अवस्था ह्वापर की होती है, इसमें रोगी की ग्रन्थि काफी अधिक सक्रिय पायी गयी है, दूसरी अवस्था में छाइयों में ग्रन्थि बहुत कम सक्रिय पायी गयी है जबकि तीसरी अवस्था के थाइराइड में ग्रन्थि का आकार बढ़ जाता है।

थाइराइड रोग की प्रमुख पहचान गले में ग्रन्थि का शोथ होता है। अनेक स्त्रियों में गर्भावस्था के दौरान थाइराइड हार्मोन की आवश्यकता बढ़ जाती है, जिसके परिणामस्वरूप गायटर उभर कर आ जाता है।

थाइराइड रोग में गले में ग्रन्थि बढ़ने के साथ रोगी को खाने–पीने में तकलीफ होती है। अधिक शोथ होने पर ग्रन्थि काफी बढ़ जाती है, जिससे खाना–पीना तो दूर सांस लेने तथा बोलने में भी तकलीफ होने लगती है, यह रोग किसी भी उम्र में हो सकता है। अधिक उम्र की महिलाओं में थायरॉयडाइटिस के कारण ग्रन्थि में शोथ होता है।

शरीर में थाइराइड हार्मोन्स की कमी के कारण शरीर में ऊर्जा निर्माण की गति को जबरदस्त आघात पहुंचता है। शरीर में इस ऊर्जा निर्माण की गति में कमी आने के कारण, अनेक दूसरी किस्म की विकृत्तियाँ भी उत्पन्न होने लगती हैं। स्वर में भारीपन आ जाता है, शरीर में हमेशा थकान बनी रहती है, शरीर के विभिन्न अंगों में पीड़ा के लक्षण उभरने लगते हैं। रोगी अधिक सर्दी का अनुभव करने लगता है, रोगी की स्मरण शक्ति पूरी तरह क्षत–विक्षत हो जाती है, इससे रक्त एवं रक्त निर्माण में भारी कमी होने लगती है। शरीर की त्वचा शुष्क तथा मोटी होने लगती है। पेट में कब्ज की शिकायतें बनती हैं। महिलाओं के लिए तो यह और भी घातक है रोग की प्रबल अवस्था

में स्त्रियाँ स्थूल हो सकती हैं और मासिक धर्म अनियमित होने के साथ–साथ भारी मात्रा में स्राव भी हो सकता है।

थाइराइड ग्रन्थि, विशेष परिस्थितियों में कभी कभी बेहद सक्रिय हो सकती है, यह स्थिति अधिक खतरनाक है। ग्रन्थि में सक्रियता बढ़ने के कारण शरीर में अधिक मात्रा में थाइराइड हार्मोन बनना प्रारम्भ हो जाता है, इस विकृत्ततावस्था को "थाइराक्सिकोसिस" के नाम से जाना जाता है। पुरुषों में इस प्रकार की अवस्था काफी कम मात्रा अथवा नाममात्र की पायी जाती है। इसके होने से हाथ–पांवों में कम्पन, भूख बढ़ना पर शारीरिक भार कम होते जाना, गर्मी अधिक लगना, बार–बार पसीना आना, मानसिक तनाव व बैचेनी जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। थाइराइड ग्रन्थि का इस तरह के अप्रत्याशित विकास की स्थिति में ग्रन्थि में गांठ बनने के जैसे लक्षण भी होते हैं।

हाइपो–थाइराइड की विकृत्ति बढ़ने पर रोगी के बार–बार बेहोश होने तथा कौमा में चले जाने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। स्त्रियों में ऋतुस्राव अप्रत्याशित रूप से बढ़ जाता है।

आयोडीन की कमी का असर बच्चों में और भी जल्दी पड़ने की सम्भावना बनी रहती है। इसकी कमी से बच्चों का शारीरिक एवं मानसिक विकास सही ढंग से नहीं हो पाता है अथवा अवरूद्ध हो जाता है।

घेंघा होने की सम्भावना यौवनावस्था में सबसे अधिक रहती है। आयोडीन की कमी में जीवन जीते बच्चे, जब यौवनावस्था में पहुंचते हैं तब उन्हें थाइराइड हार्मोन की अधिक जरूरत पड़ती है। यदि उस समय उनके शरीर को समुचित मात्रा में आयोडीन उपलब्ध नहीं हो पाता है, तो उस स्थिति में थाइराइड ग्रन्थि अधिकाधिक मात्रा में थाइराइड हार्मोन उत्पन्न करने की कोशिश करती है। इस कोशिश में वह फूलकर बढ़ने लगती है। इस प्रक्रिया में भी ग्रन्थि को आयोडीन की प्रचुर मात्रा नहीं मिल पाती है। तब यह ग्रन्थि हमेशा के लिए स्थाई रूप से फूली रह जाती है। बाद में इस ग्रन्थि का आकार असामान्य रूप से बढ़ने लग जाता है। इस स्थिति में रोगी को खाने–पीने–बोलने, सांस लेने, दौड़ने, काम करने में कष्ट होता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में तो आयोडीन की कमी से होने वाली बीमारियाँ, बीसवीं सदी के अन्त तक भी अपना स्थाई डेरा जमाये

बठी हैं। यद्यपि आयोडीन की कमी को पूरा करने के लिए नमक में आयोडीन मिलाकर प्रयोग करने का सिलसिला चल पड़ा है पर वर्तमान स्थिति से सन्तोष नहीं किया जा सकता क्योंकि जब तक शासन–प्रशासन पर बैठे सत्ता संचालक विशेष ध्यान न दें तथा आम जनता जागृत होकर सहयोग न करे तब तक किसी समस्या को जड़ से उखाड़ पाना सम्भव नहीं है।

नमक में आयोडीन मिलाने की प्रक्रिया काफी सरल है। इस प्रक्रिया में पोटेशियम आयोडाइज्ड में सामान्य नमक की एक निश्चित मात्रा मिला दी जाती है, इस तरह नमक आयोडीन युक्त हो जाता है। आयोडीन की कमी को पूरी करने के लिए, कई पश्चिमी देश आयोर्डीन युक्त खाद का प्रयोग करने लगे हैं, जिससे वहां के जानवरों को आयोडीन युक्त चारा मिलता है, उससे मवेशियों के दूध में आयोडीन की पर्याप्त मात्रा बनी रहती है। परन्तु इसके विपरीत भारतवर्ष में, डेयरी के दूध में प्रिजरवेटिव के रूप में थायोसाइनिट्स मिलाया जाता है, जो घेंघा अथवा थाइराइड रोग का प्रमुख कारण बन रहा है, क्योंकि साधारण दूध में वैसे भी थायोसाइनेट्स प्रतिलीटर दस से बीस मिलीग्राम तक प्राकृतिक रूप से उपलब्ध रहता है, जो दूध को उबालने के बाद भी समाप्त नहीं हो पाता है। डेयरी के दूध में अधिक मात्रा में मौजूद थायोसाइनेट्स तथा दूसरे प्रिजरवेटिवों के कारण ही बच्चों में घेंघा रोग बढ़ रहा है, यानि जो जितना ज्यादा डेयरी का दूध पीयेगा, वह उतना ही ज्यादा घेंघा का शिकार होगा। दिल्ली में किये गये 1987 के अध्ययन के आधार पर साधारण स्कूलों की अपेक्षा, अमीर स्कूलों के बच्चों में घेंघा के लक्षण अधिक पाये गये। ये बच्चे डेयरी के दूध का सेवन अधिक करते थे। जबकि गरीब बच्चों को दूध नहीं के बराबर उपलब्ध होता था।

अनेक सब्जियों में ओसाइनेट नामक रसायन पाया जाता है जो थाइराइड हार्मोन की उत्पत्ति में बाधा डालता है, थाइराइड रोग की स्थिति में तथा महिलाओं को गर्भावस्था के दौरान ओसाइनेट रसायनयुक्त सब्जियों से परहेज करना चाहिए। उक्त रसायनयुक्त सब्जियों में प्रमुख हैं, गोभी, शलजम, केला, भिण्डी, सोयाबीन आदि।

घेंघा भारत वर्ष का प्राचीन रोग माना जाता है। एक समय केवल हिमालय की तराई और उससे जुड़े मैदानी इलाकों में पूर्व से पश्चिम

तक 24000 किलोमीटर लम्बी पट्टी, इस बीमारी की जड़ मानी जाती है। आदिवासी क्षेत्रों में भी यह बीमारी पर्याप्त रूप से देखने को मिलती थी, लेकिन बाद में अध्ययनों से ज्ञात हुआ, कि सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में ही इस बीमारी का वजूद और खतरा बरकरार है।

भारतीय उपमहाद्वीप में कई क्षेत्र,आयोडीन की कमी वाले क्षेत्र हैं। भारत वर्ष के मध्य प्रदेश के सीधी, शहडोल, सरगुजा, रायगढ़ तथा कई अन्य जनपद, सतपुड़ा और विन्ध्याचल के दोनों ओर के ढलानों वाले क्षेत्र तथा देश के कुछ अन्य भागों को आयोडीन की कमी वाला क्षेत्र पाया गया है। कई क्षेत्रों के पानी में आयोडीन की भारी कमी है। जिनकी पूर्ति अन्य माध्यमों से की जानी अति आवश्यक है।

पूरी दुनियां में आयोडीन की कमी से जो खतरनाक साया पड़ा है, उसे दूर करने हेतु विश्व स्तर पर सामूहिक प्रयास किये जाने चाहिए। नमक में आयोडीन मिलाना हो अथवा खादों में इसे मिलाकर दूध व अन्य माध्यमों से आयोडीन प्राप्त करने की प्रक्रिया हो, इस पर नियम कानून बनाने से कुछ खास होने वाला नहीं आवश्यकता है, इसके क्रियान्वयन की, दरअसल आयोडीन की कमी का एक सबसे बड़ा कारण कुपोषण है। जब, इन्सान को सही ढंग से सही कैलोरी वाला भोजन ही नहीं मिल पायेगा, तो उस स्थिति में उनके शरीर में निश्चित आयोडीन की समुचित मात्रा भी नहीं मिल सकती है, इसलिए इस कमी को दूसरे माध्यमों से पूर्ति किया जाना आवश्यक है।

आयोडीन की कमी की सम्भावना की स्थिति में तुरन्त डाक्टर के पास जाना चाहिए। आयोडीन की कमी वाली महिलाओं को भी गर्भधारण से पूर्व शरीर में आयोडीन की पूर्ति हेतु आवश्यक कदम उठा लेने चाहिए। रोगी को अधिक मात्रा में आयोडीन मिश्रित जल पिलाना आवश्यक है। इस युग में थायराथड रोग असाध्य नहीं है यदि समय रहते उसका उपचार करा लिया जांये।

22
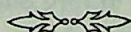
नमक तथा स्वास्थ

लवण,एक प्रकार का रसायनिक यौगिक है, जो अम्ल एवं क्षार के योग से निर्मित होता है। नमक का रासायनिक नाम सोडियम–क्लोराइड है। सोडियम अत्यधिक ज्वलनशील पदार्थ है तथा मात्रा से अधिक क्लोराइड भी नुकसानदायक है।

नमक को स्वाद का पर्याय माना जाता है। बिना नमक के भोजन का स्वाद बेस्वाद हो उठता है। भोजन की बात तो दूर, साधारणतया नमक फलों–कच्चे सब्जियों, सलाद आदि तक में भी प्रयोग किया जाने लगा है।

शरीर की दृष्टि से अवलोकन करें तो मानव के शरीर को प्रतिदिन 4 से आठ ग्राम तक नमक की मात्रा की आवश्यकता होती है, परन्तु अधिसंख्य लोग प्रतिदिन इसके दूने अथवा उससे भी अधिक नमक का प्रयोग करते हैं। आवश्यकता से अधिक प्रयोग किया गया अथवा शरीर में समुचित मात्रा से, अधिक संचित नमक, स्वास्थ के लिए लाभकारी होने के स्थान पर हानिकारक भी हो सकता है।

शरीर में नमक की मात्रा, आचार–व्यवहार, कार्य के प्रकार तथा मौसम के अनुसार परिवर्तित होकर घटती बढ़ती रहती है। शारीरिक श्रम के कार्यों में, गरमी के दिनों में, कहने का अभिप्राय है, कि जब और जिस कार्य से शरीर से पसीना अधिक निकलता है, उस स्थिति में शरीर में नमक की अनुपातिक मात्रा से अधिक नमक की आवश्यकता होती है, पर सदैव नमक की निर्धारित मात्रा से अधिक मात्रा में नमक लेना स्वास्थ के लिए अहितकर है। नमक की अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि दोनों स्वास्थ के लिए घातक हैं।

ब्रिटेन के चिकित्सकों ने 1994-95 में अपनी शोध रिपोर्ट में स्पष्ट किया है कि शरीर में नमक की अधिक मात्रा कैंसर पैदा करती है। जब कैंसर कोशिका का चिकित्सीय विश्लेषण किया तो पता चला कि उसमें नमक की भारी मात्रा थी।

प्रयोग में वैज्ञानिकों ने स्वस्थ और कैंसरग्रस्त कोशिकाओं का अलग–अलग अध्ययन कर नमक की मात्रा जानी। इसके लिए पहले कोशिकाओं को उच्च निर्वात (वैक्यूम) वाले इलैक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से देखा गया और कोशिकाओं की दशाओं का विवरण नोट किया गया। इसके बाद अतिविकसित सूक्ष्मदर्शी से अध्ययन किया गया। कैंसर–ग्रसित कोशिकाओं में सोडियम लवणों यानि नमक की भारी मात्रा पाई गई।

एक अन्य प्रयोग से ज्ञात हुआ है कि मूत्राशय की रसौली में स्वस्थ कोशिकाओं की अपेक्षा सोडियम की मात्रा दुगनो–तिगुनी अधिक होती है। कहना न होगा कि नमक की अधिक मात्रा कैंसर को जन्म देने के लिए न्यौता है। चिकित्सकों की राय में स्वाद के लिए जितने नमक की आवश्यकता है, उतना ही नमक खाएं। शर्करा की अधिक मात्रा की तरह नमक की अधिक मात्रा भी नुकसानदायक है। उच्च रक्तचाप से बचने के लिए नमक की कम मात्रा का उपयोग लाभदायक है।

शरीर में नमक की मात्रा बढ़ने से उच्च रक्तचाप की स्थितियां पैदा हो जाती हैं, क्योंकि उच्च रक्तचाप के मरीजों के लिए शरीर में बढ़ीं हुई सोडियम की मात्रा भारी परेशानी पैदा करती है। यही कारण है कि चिकित्सक उच्च रक्त चाप के रोगियों को सर्वप्रथम नमक से परहेज करने के लिए कहते हैं।

वर्तमान भौतिकवादी युग में नमक के विकल्प तैयार किये जा चुके हैं, जो अधिक नमक सेवन करने वालों के लिए अत्यन्त खुशी की बात है।

नमक (सोडियम क्लोराइड) के स्थान पर सोडियम कार्बोनेट का प्रयोग किया जा सकता है। सोडियम कार्बोनेट में उपस्थित कार्बोनेट अम्ल के साथ क्रियाशील होकर कार्बन डाईआक्साइड का निर्माण करता है जो गैस के रूप में शरीर से बाहर हो जाती है।

कोशिश की जानी चाहिए कि मात्रा से अधिक नमक न लिया

जाय तथा विशेषकर अधिक सोडियम वाले पेय पदार्थों के सेवन से भी बचना चाहिए। नमक की कमी को दूर करने के लिए अन्य सोडियम युक्त पदार्थ अधिक लिये जा सकते हैं। सोडियम वाले प्रमुख कुछ पदार्थ हैं, नींबू, स्वच्छ जल, नदी, पोखर, तालाबों की मछलियां तथा लवण युक्त फल तथा सब्जियां।

वर्तमान में कम सोडियम वाले नमक भी प्रचलन में हैं। यह शरीर में अनाधिकृत रूप में सोडियम के अधिक मात्रा में प्रवेश करने को रोकता तो है ही, साथ ही स्वाद में भी अन्तर नहीं आने देता। यह दिखने, पकने व स्वाद में भी पूरी तरह बिलकुल नमक की तरह होता है। अधिक मात्रा में नमक प्रयोग करने वालों को इस प्रकार के विकल्प अपना लेने चाहिए, ताकि वे सोडियम की अधिकता से शरीर को होने वाली हानियों से स्वयं को बचाये रख सकें।

नमक की चर्चा आ ही गयी है तो इसके बहुपयोगी फायदों पर भी एक दृष्टि डाल लेना उचित होगा। चेहरे पर झाइयां होने की स्थिति में शहद व नमक मिलाकर चेहरे पर लेप करने से झाइयां मिट जाती हैं, सर्दियों में नहाते समय पानी में एक चम्मच नमक डालकर नहाने से शरीर की त्वचा क्रान्तिमान बनी रहती है।

गर्म पानी में नमक मिलाकर कपड़े धोने से जल्दी साफ तथा सफेद हो जाते हैं। बेहोशी की अवस्था में नमक युक्त पानी को नाक में डालने से मूर्च्छा टूटती है। कान में कीड़ा मच्छर घुसने की स्थिति में गर्म पानी में थोड़ा सा नमक मिलाकर उसकी कुछ बूंदें कान में डालने से कीड़ा तुरन्त बाहर निकल आता है। मच्छर आदि तुरन्त मर जाता है जिससे तुरन्त आराम पहुंचता है।

मिट्टी तेल से चलने वाले गैस, लैम्प, लालटेन के मिट्टी के तेल में थोड़ा नमक मिला देने से अप्रत्याशित रूप से रोशनी की चमक बढ़ जाती है तथा तेल भी कम खर्च होता है।

हाथ पांव या शरीर का अंग जलने की स्थिति में नमक पोतने से फंफूदे नहीं निकलते हैं। उबलती कड़ी में नमक डालने से कड़ी नहीं फटती। काफी उबालने से पूर्व यदि उसमें चुटकी भर नमक डाला जाय तो इससे उसकी गन्ध काफी बढ़ जाती है।

पिलपिले टमाटरों को बर्फ वाली पानी में नमक डालकर डुबो देने से दस मिनट के भीतर ही टमाटर सख्त हो जाते हैं। कढ़े दूध

में थोड़ा सा मक्खन मिलाने से मक्खन जल्दी निकल जाता है।

चेप वाली सब्जियां भिण्डी, कटहल, लसोड़े आदि सब्जियों को काटने से पूर्व हाथ पर नमक रघड़ने से सब्जी आसानी से कट जाती है तथा सब्जी के चेप चिपचिपाते नहीं। तेल की चिकनाई युक्त हाथों में थोड़ा नमक रघड़ने से हाथ तुरन्त साफ हो जाते हैं।

जले हुए बरतनों में नमक डालकर मांजने से बरतन साफ हो जाते हैं। जूठे बरतन को मांजने से पूर्व थोड़ा नमक मिला देने से भी वे चमकने लगते हैं। रेशमी अथवा सूती कपड़े यदि रंग छोड़ रहे हैं, तो नमक युक्त पानी में आधे घंटे तक उन्हें भिगोये रखने के बाद धोने व सुखा लेने पर कपड़े रंग नहीं छोड़ते हैं।

प्याज की गन्ध, छुरी अथवा बरतन से नहीं जा रही हो, तो नमक रघड़ने से तुरन्त गन्ध चली जाती है। बरसात के दिनों में कुटी लाल मिर्च में थोड़ा नमक मिलाने से वह खराब नहीं होती। बरतनों चूल्हा आदि पर दूध, तरल पदार्थों के दाग हटाने के लिए, नमक से घिसकर सफाई करने से चमक बढ़ जाती है, स्याही के दाग भी नमक से तुरन्त छूट जाते हैं।

शरीर में गुम चोट होने पर, हल्का गर्म नमक–पानी से सेंकने तथा गले में खंरास व दर्द में नमक युक्त गुनगुने पानी से कुल्ला करने से लाभ पहुंचता है।
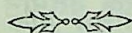
23

खेसारी दाल के दुष्प्रभाव

गरीबों की दाल के नाम से प्रसिद्ध खेसारी दाल (लेथाइरस सेटिवस) आज भारत के अधिकांश हिस्सों में उगाई एवं खायी जाती है। बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश में तो इसकी खेती पर किसी भी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इस दाल की सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि यह कठिन से कठिन परिस्थितियों में उगाई जा सकती है यही कारण है कि यह अन्य दालों की अपेक्षा काफी सस्ती है और सस्ती होने से गरीबों में लोकप्रिय भी है। खेसारी के कई अन्य नाम भी हैं, इसे खेसारी के सिवाय ''मटरा, त्योरादाल तथा लाक दाल भी कहा जाता है।

खेसारी दाल का प्रयोग स्वास्थ की दृष्टि से अत्यन्त हानिकारक है। यह समाज को ऐसा स्थाई लंगड़ापन दे सकता है, अथवा देता है। जिसका इलाज अभी तक वर्तमान चिकित्सा व्यवस्था के पास उपलब्ध नहीं है। इस दाल का नियमित सेवन करना जीते जी अपंगता को आमन्त्रण देना है। इस जहरीले दाल के सेवन से तंत्रिका रोग लेथाइरिज्म होता है। दोनों टांगों तक बेकार हो जाती हैं तथा रोगी जीवन भर के लिए अपाहिज हो जाता है।

इस खतरनाक खेसारी दाल में अत्यधिक घातक विषैला तत्व बीटा–ओगजेलिल–एमीनो–एलामिन होता है। जो छह महीने या ज्यादा समय दाल लिये जाने की स्थिति में अपना दुष्प्रभाव दिखाना प्रारम्भ कर देता है और फिर दाल प्रयोग करने वाले को अपाहिज बनाकर जीवनभर घिसटने के लिए छोड़ देता है। यद्यपि कुछ प्रदेशों में इस दाल को उगाने में प्रतिबन्ध लगाया गया है, परन्तु क्षेत्र विशेष

के प्रतिबन्ध से पूरे समाज का हित नहीं हो सकता। प्रश्न एक को बचाकर दूसरे को मौत के मुंह में जाने के लिए खुला छोड़ देने के समान है।

अनुमान है, कि सदियों पहले खेसारी का जो पौधा, खरपतवार के रूप में समाज में आया था, वह बाद में धीरे–धीरे प्रोटीन के श्रोत के नाम पर खेती के लिए संरक्षित फसल के समान अपनी जगह सुदृढ़ कर बैठा, जब जब इस जानलेवा पौधे के दाल के उपयोग की चर्चा आती है, तब मवेशियों को बीच में लाकर पिण्ड छुड़ा लिया जाता है। लगातार नष्ट हो रहे चरागाहों की स्थिति में चारे का कोई विकल्प तो शासन–प्रशासन को चाहिए ही, भले ही उससे मानव स्वास्थ पर कितना भी बुरा प्रभाव क्यों न पड़े। आसानी से उपलब्ध व कठिन परिस्थितियों में पैदा होने एक दाल के अस्तित्व को तो नहीं मिटाया जा सकता, क्योंकि फिर कैसे गरीबों के पेट की भूख मिटायी जा सकेगी। इन्हीं भावनाओं–विचारों के चलते खेसारी दाल निशंकता से समाज को लंगडा बनाते चली जा रही है।

खेसारी दाल के प्रसंग को राष्ट्रीय चर्चा का विषय बनाने का श्रेय, सामाजिक कार्यकर्ता ज्योतिप्रकाश को जाता है, जिन्होंने खेसारी दाल को मजदूरी में दिये जाने का मामला, उच्चतम न्यायालय में उठाया था, जिसकी जवाबदेही के लिए सरकार भी कठघरे में आ गयी, प्रसंग की व्यापकता एवं गम्भीरता के कारण संसद, विधानसभा योजना आयोग–पर्यावरण विभाग सभी में हलचल प्रारम्भ हुई, लेकिन दुर्भाग्यवश अन्ततः परिणाम कोई सन्तोषजनक नहीं निकला।

खेसारी दाल के विशेषज्ञ माने जाने वाले, भारत के महान वैज्ञानिकों ने, इस दाल पर उल्टे सीधे शोध किये और जन कल्याण को ताक में रखकर उल्टी–सुल्टी बयानबाजी कर, सम्पूर्ण वातावरण को भ्रम के जाल में लपेटकर, सामाजिक ठेकेदारों का निहित स्वार्थ पूरा कर दिया। इन महान विभूतियों व वैज्ञानिकों ने खेसारी दाल के विषैले तत्वों को दूर करने की एक महान विधि सुझा दी, जिससे देश में उठा तूफान आग में पानी पड़ने के सदृश ठण्डा हो गया।

खेसारी की मिट चुकी चर्चा में 1983 में एक बार फिर नया तूफान उठ खड़ा हुआ, जिसने भारत वर्ष में भी तहलका मचा दिया। कारण, बंगलादेश में हुए वैज्ञानिक परीक्षणों के बाद परीक्षणकर्त्ता

वैज्ञानिकों ने डंके की चोट पर, निर्णायक रूप से यह सिद्ध कर दिया कि वर्तमान में वैज्ञानिक विधि से सुझाई जा रही, किसी भी विधि से खेसारी दाल से उसके विषैले तत्वों को अलग नहीं किया जा सका है। सुझाई गई विधि पूरी तरह झूठी एवं भ्रमपूर्ण है। इससे वास्तविक स्थिति सामने आ पायी और लोगों का गलत भ्रम टूटा।

बंगलादेश के वैज्ञानिकों ने, भारत के वैज्ञानिकों का फैलाया गया परिमार्जन विधि का भ्रमजाल ही नहीं तोड़ा, बल्कि उन्होंने भारतीय वैज्ञानिकों के उस कथन को भी अपने प्रयोगों से पूर्ण रूप से गलत साबित कर दिया, जिसमें कहा गया था, कि खेसारी दाल का तत्व जानवरों को भी प्रभावित करता है तथा अन्य प्राणियों में लेथरिज्म जैसे लक्षण उत्पन्न करने के लिए, उनकी नशों में खेसारी के जहर का इन्जेक्शन देना आवश्यक है। बंगला देश के वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों से पहली बार इस भ्रम को तोड़ते हुए बताया, कि पाचन तन्त्र के माध्यम से खेसारी दाल का जहर आदमी के अलावा किसी अन्य प्राणी पर अपना प्रभाव नहीं डालता।

अमेरिका में भी खेसारी दाल पर प्रयोग किया गया, उसके वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध करके बताया कि खेसारी दाल में उपलब्ध जहरीला तत्व ''क्युमुलेटिव'' है। यद्यपि भारतीय वैज्ञानिकों ने तत्काल उनकी बात को नकार दिया, जबकि इस कुतर्क के लिए उनके पास कोई साक्ष्य अथवा आधार नहीं था। वे ये भी भूल गये, झूठ की बुनियाद पर खड़े किये ढांचे के, पैर नहीं होते हैं।

भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा फैलाये गये झूठ व आडम्बर के जाल को तब और भी गहरा धक्का लगा, जब विदेश में यह लेख छपा, कि ''खेसारी दाल के तथाकथित विषमुक्ति की प्रक्रिया में विष तो मुक्त नहीं हो सका, परन्तु दाल के अन्य मानव उपयोगी तत्व अवश्य नष्ट होकर दाल से मुक्त हो गये, जो दाल बची वह मात्र जहरयुक्त रह गयी।

1982 में व्यवस्थित सर्वेक्षण के आधार पर, मध्य प्रदेश के दो जिलों मात्र रीवा तथा सतना में खेसारी दाल खाने से, हुए लंगड़े लोगों की संख्या पचास हजार से अधिक पायी गयी, जबकि सितम्बर–82 में म०प्र० विधान सभा में उसी सर्वेक्षक विशेषज्ञ के

हवाले से अवगत कराया गया कि राज्य में खेसारी लंगड़ों की संख्या मात्र 11,250 है।

सरकार का यह झूठा बयान सुविधाजनक स्थिति नहीं जुटा पाया तो, अप्रैल 1983 में विधानसभा में पुनः बयान दे दिया गया, कि प्रदेश में लेथरिज्म रोगियों की संख्या 2197 है, हालाकि इस तर्क को उसने खुद सर्वोच्च न्यायालय में काट डाला, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय के सामने मध्यप्रदेश सरकार ने शपथ पूर्वक जो बयान दिया, उसके आधार पर खेसारी दाल के कारण लेथरिज्म रोग के लंगड़ों की संख्या किसी भी आधार पर 40,000 से कम नहीं निकलती थी।

शासन–प्रशासन आम जनता के बीच आंखमिचौनी खेलता खेसारी दाल का प्रचलन बदस्तूर जारी है। गरीब तो वक्त और भूख का मारा है, परन्तु सामर्थ्यवान व्यवस्था परिवर्तन करने से लगातार हिचक रहा है, टालमटोल का दौर बदस्तूर जारी है। क्योंकि वर्षा की अनिश्चितता के वाबजूद भी खेसारी दाल गरीबों के नकद फसल बीमा के समान है।

खेसारी दाल का उपभोग तथा भोजन के रूप में इसके प्रयोग को हर हाल में रोकना होगा। पशु चारे की आड़ में मानव की बलियां नहीं दी जानी चाहिए। यदि सरकार का इस घातक–विषाक्त दाल के प्रति मोहजाल ज्यादा ही है, तो उसे चाहिए कि वैज्ञानिक परीक्षणों–प्रयोगों के माध्यम से इस दाल में पाये जाने वाले घातक जहरीले तत्व "क्युमुलेटिव" तत्व को दाल के बीज से बाहर कर परिष्कृत बीज तैयार करे, जिसमें क्युमुलेटिव तत्व की मात्रा नाम मात्र की भी नहीं रहे। वैज्ञानिक जब तक इस प्रयोग से संवर्धित शुद्ध बीज नहीं बना लेते, तब तक तो इस दाल के प्रयोग पर, मानवता एवं मानव कल्याण के आधार पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए। साथ ही इसकी खेती पर भी पूर्ण प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए। उस स्थिति में भी गरीब लोग चोरी छिपे इस दाल की खेती न कर पायें इस पर भी कड़ी नजर रखी जानी चाहिए।
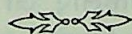
24

गृह प्रदूषण के दुष्प्रभाव

सामान्यता व्यक्ति का, वर्तमान भौतिकवादी रहन–सहन आदि भी प्रदूषणों की आधारशिला पर टिका है, जिससे कई तरह से स्वास्थ पर हानिकारक प्रभाव पड़ते हैं।

घरों का सीलन युक्त होना, हवाघर कमरों के स्थान पर बन्द कमरों वाले कमरों का निर्माण, दरवाजे–खिड़कियां बन्द कर कमरों में बैठने की आदतें, मकान में प्रयुक्त किया गया सीमेन्ट तथा उसके सीलन के दुष्प्रभाव से होने वाली स्वास्थ हानि ऐसे कारण हैं, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि मानव खुद ही नाना प्रकार के रोगों को आमन्त्रण दे रहा है।

घर अथवा कमरे में बीड़ी–सिगरेट, चरस आदि का धूम्रपान करने से परिवार के अन्य सदस्यों को, नशेड़ी सदस्य धूम्रपान से होने वाली बीमारियों को पुरस्कार स्वरूप देते जाते हैं, वे खुद अपना स्वास्थ ही बर्बाद नहीं करते बल्कि जाने अनजाने परिवार के शेष सदस्यों–बच्चों का स्वास्थ भी बिगाड़ते रहते हैं।

घर अथवा रसोईघर में चूल्हे में जलावन, लकड़ी, गोबर के कण्डे, कोयला आदि जलाने से होने वाले दुष्प्रभावों के बारे में पिछले अध्याय 'ऊर्जा और उसके दुष्प्रभाव' में विस्तृत रूप से चर्चा की जा चुकी है। फिर भी यहां पर भी यह बता देना आवश्यक है, कि नब्बे के दशक से पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय सर्वेक्षणों के आधार पर गुजरात के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली महिलाएं, जो परम्परागत चूल्हों पर खाना बनाती हैं, एक दिन में 200 सिगरेटों के डिब्बियों के बराबर धुआं पी जाती हैं। यह सर्वेक्षण डरावना ही नहीं खतरनाक भावी परिणामों

की चेतावनी देता है।

कुकिंग गैस तो वर्तमान में लगभग सभी सम्पन्न व मध्यम वर्गीय परिवारों में लोकप्रिय होती जा रही है। यह गैस बदबूदार तथा रंगहीन पेट्रोलियम गैस है। चूल्हा जलाते समय तथा खाना बनाने के बीच जो थोड़ी बहुत गैस वातावरण में मिलती है वह भी स्वास्थ के लिए अत्यन्त हानिकारक होती है। यह गैस मानव रक्त में मिलकर हीमोग्लोबिन को नष्ट करने में समर्थ होती है,जो रक्त वाले विकारों व रोगों का उत्पन्न कर सकती है, इससे श्वास लेने में भी तकलीफ होती है। इसे कुछ समय तक सूंघने से व्यक्ति की मौत हो जाती है। कुकिंग गैस के उपकरणों से भी भोजन बनाते समय कुछ मात्रा में नाइट्रोजन गैस निकलती है जो श्वास सम्बन्धी अनेक तकलीफों को पैदा कर सकती है। कुकिंग गैस के उपकरणों में फार्मेल्डिहाइड्स जैसा तत्व मिलाया जाता है जो कैन्सर का एक प्रमुख कारक होता है।

उपभोक्तावाद और भौतिकवाद के घरेलू वस्तुओं व उपकरणों ने भी प्रदूषण फैलाने में पर्याप्त मदद की है। बरतन एवं स्वास्थ के दुष्प्रभाव की चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है। कपड़ों को सुरक्षित रखने हेतु प्रयोग में लायी जाने वाली फिनायल, अथवा नेप्थलीन की गोलियां, मच्छरों को भगाने हेतु प्रयुक्त की जानी वाली छिड़कने वाली दवाएं, मच्छर भगाने वाली धूप, कोकरोच खटमल, पिस्सू तथा दीमक मारने वाली दवाओं का,घर में छिड़काव भी स्वास्थ की दृष्टि से अत्यन्त हानिकारक है,क्योंकि ये छिड़कने वाली अथवा प्रयुक्त की जाने वाली दवाईयां, घातक– विषैले रसायनिक तत्वों से निर्मित होती हैं, जो मानव शरीर पर दूरगामी दुष्परिणाम डालती हैं, इनका अधिक प्रयोग अनेकों खतरनाक व घातक बीमारियों को जन्म देने में सक्षम है,क्योंकि साधारण सी देखने वाली नेप्थलीन व फिनायल की गोलियों में, जी मितलाना, थकावट, उनींदा पन, पेट सम्बन्धी तकलीफें, रक्त सम्बन्धी गड़बड़ियां उत्पन्न करने की प्रबल शक्ति होती है।

तेज महक फैलाने वाले,परफ्यूम्स, एयर फ्रेशनर्स तथा डैराइज (गन्ध नाशकों) का घरों में स्प्रे करना तथा अधिक प्रयोग करना भी स्वास्थ की दृष्टि से हानिकारक है। घरों की सजावटी पेटिंग

मीनाकारी पेंटिग, पेन्ट की हुई दीवारें भी घर के वातावरण को प्रदूषित करती है, इनसे बच्चों का मानसिक विकास अवरूद्ध होता है तथा उनका रक्तचाप बढ़ सकता है।

ड्राईक्लीन करने के बाद कपड़ों में हानिकारक रसायनों का प्रभाव पूरी तरह नष्ट नहीं होता है, जिससे ड्राइक्लीन किये कपड़े पहनने भी स्वास्थ के लिए हानिकारक होते हैं। ड्राइक्लीन किये हुए कपड़ों को पहनने से पूर्व अच्छी तरह खुली हवा एवं धूप में सूखा लेना लाभदायक होता है, क्योंकि इस क्रिया से हानिकारक रसायनों का प्रभाव काफी मात्रा में कम हो जाता है।

घरों में साधारण सी दिखाई देने वाली धूल–मिट्टी से भी खांसी–श्वास की तकलीफें व अस्थमा जैसी बीमारियां हो सकती हैं। अतः घर को स्वच्छ साफ बनाये रखना, स्वास्थ की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है। भोजन बनाने व खाना खाने से पूर्व हाथ को अच्छी तरह से साफ करना भी स्वास्थ की दृष्टि से अत्यन्त लाभकारी है।

एक महत्वपूर्ण पर्यावरण एजेन्सी की रिपोर्ट में बताया गया है कि, अमेरिका के घरों में फैलने वाला प्रदूषण 18 धातुक प्रदूषणों में सबसे ऊपर है, जो कैन्सर फैला सकता है, कुछ वैज्ञानिकों ने यह भी दावा किया है, कि अमेरिका में जिन 10 विभिन्न कारणों से जो मौतें होती हैं, उनमें घरों में फैलने वाला प्रदूषण ही सबसे प्रमुख कारण है। इस वैज्ञानिक अध्ययन की रिपोर्ट के बाद तो, भारतीयों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए, कि वे पश्चिमीकरण का अन्धाधुन्ध नकल न करते हुए अपने घरों को प्रदूषण रहित बनायें। खुले व स्वच्छ हवादार घर बनायें।

उपभोक्तावाद के नये चरण में कदम रखने, घर में सुख सुविधाओं व अन्य आधुनिक भौतिकवादी सामग्रियां, वस्तुएं लाने तथा उसका प्रयोग करने से पूर्व, उनसे होने वाली हानियों से भी भली भांति अवगत हो लें। कोशिश की जानी चाहिए, कि घरों में परफ्यूम्सों, कीटनाशकों और आफ्टर–थेवज का इस्तेमाल बिल्कुल न किया जांय, सुविधानुसार रसोईघरों के प्रदूषण को कम करने के प्रयास किये जायं तथा घरों व कमरों में धूम्रपान का प्रयोग बिल्कुल न किया जाय। इस तरह गृह प्रदूषणों को कम किया जा सकता है।
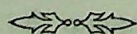
25
भूमि-प्रदूषण के दुष्प्रभाव

पर्यावरण के महत्वपूर्ण अंगों में भूमि का अपना विशेष महत्व है। प्रकृति से छेड़छाड़, आधुनिकता की दौड़, प्रदूषण तथा भूमि के अवाध दोहन से भूमि--प्रदूषण लगातार बढ़ता चला जा रहा है, भूमि प्रदूषण भी प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों स्वरूपों में मानव के स्वास्थ पर अनेकों दुष्प्रभाव छोड़ जाता है।

भूमि प्रदूषण के प्रमुख कारकों में, एक कारक भूक्षरण की प्रक्रिया है। भूक्षरण से लगातार कृषि योग्य भूमि का विनाश होता चला जा रहा है। कृषि योग्य भूमि यदि लगातार इसी तरह समाप्त होती रही तो, उससे धरती पर होने वाली उपज पर प्रभाव पड़ेगा, जिसके परिणाम स्वरूप भूखमरी, अकाल, कुपोषण को बढ़ावा मिलेगा।

भूमि प्रदूषण के अन्य कारकों में कृषि योग्य भूमि का लगातार विदोहन भी है। इस महत्वपूर्ण मिट्टी में हम महलों, शहरों, फैक्ट्रियों, आवासों, कार्यालयों, सड़कों आदि का जंगल खड़ा करते जा रहे हैं, जिससे दिन प्रतिदिन खतरनाक ढंग से कृषि योग्य भूमि विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही है। एक ओर कंकरीट के जंगल फैलते चले जा रहे हैं, वही दूसरी ओर भूमि उसी गति से नष्ट हो रही है, कंकरीट के इस फैलते जाल की गति देखकर आभास होता है, कि सम्भवतया लोग भूल चुके हैं, कि धरती पर भूमि एक निश्चित परिमाण में है, जिसे नष्ट तो किया जा सकता है, पर बढ़ाया नहीं जा सकता है।

भूमि में प्रदूषक एवं जहरीले तत्वों, अवयवों, रसायनों की बढ़ती मात्रा आहार चक्र के माध्यम से मानव शरीर में प्रवेश कर

उसके स्वास्थ को बुरी तरह प्रभावित करती है। माटी में मिलते ये घातक तत्व, भोजन–चारा आदि के रूप में माँसापयोगी जीव--जन्तुओं जानवरों के शरीर में पहुँच जाते हैं, जो माँसाहार तथा दूध आदि के माध्यम से भी मानव शरीर में पहुँचकर उसके स्वास्थ का हानि पहुँचाते हैं। इसी तरह माटी में पोषक तत्वों की कमी एवं उपज की कमी से कुपोषण–भुखमरी–अकाल की स्थिति पैदा होती है, जिससे मानव स्वास्थ पर कुप्रभाव पड़ता है।

भूवैज्ञानिकों का मानना है, कि समुचित मौसम एवं समुचित पोषक तत्व मिलते रहें तो समुचित कृषि योग्य एक सेन्टीमीटर मिट्टी तैयार होने में 500 से 1000 वर्ष तक समय लगता है। इतनी महत्वपूर्ण मिट्टी, भूमि–कुप्रबन्ध–भूक्षरण तथा मानव द्वारा खड़े किये जा रहे, कंकरीट के महलों के कारण लगातार विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही है। 1982 की एक अध्ययन रिपोर्ट बताती है, कि दक्षिण भारत के काली मिट्टी वाले इलाकों में प्रतिवर्ष 40 से 100 टन प्रति हैक्टेयर मिट्टी की उपजाऊ सतह नष्ट हो रही है। इसी तरह 1972 में लिये गये एक आंकड़े के अनुसार, भारतवर्ष में 600 करोड़ टन मिट्टी नष्ट हुई थी। यह मिट्टी अपने साथ 53 लाख 70 हजार टन नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटेशियम जैसे प्रमुख तत्वों को ले गयी थी, जिसका मूल्य उस वर्ष 700 करोड़ रुपये आका गया था। अध्ययन में यह भी पाया गया कि भूमि कुप्रबन्ध के कारण देश की 53 प्रतिशत भूमि क्षेत्र गम्भीर संकट के दौर से गुजर रही है। इस अध्ययन से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है, कि तब से अब इतने अधिक वर्षों बाद देश में भूमि की स्थिति कितनी विकट और विकराल हो चुकी होगी।

भूमि विनाश की प्रक्रिया को भी भूमि प्रदूषण के दायरे में लिया जा सकता है। शहरीकरण की प्रक्रिया भी भूमि विनाश में सबसे अहम् भूमिका अदा कर रही है। एक अनुमान के आधार पर चार–पाँच सदस्यों के एक परिवार के लिए औसत दर्जे का घर बनाने हेतु, लगभग 150 टन मिट्टी की आवश्यकता पड़ती है, जो ईंट आदि के रुप में प्रयुक्त की जाती है। शहर बसाने में जहाँ भूमि का विनाश कर उसके ऊपर महल खड़ा किया जाता

है, वहीं दूसरी ओर पर्याप्त मात्रा में ईंटों के माध्यम से भी भूमि का विनाश किया जाता है। शहरीकरण की प्रक्रिया में पर्याप्त भूमि सड़कों, रेलमार्गों आदि के द्वारा भी समाप्त की जा रही है; विकास की अन्धी दौड़ में कृषि योग्य भूमि लगातार डामरों, भवनों आदि में दफन होती जा रही है।

बाढ़, भूमि–कुप्रबन्ध, खनन, अत्यधिक चराई, वन विनाश, वर्षा आदि कई कारणों से प्रतिवर्ष कृषि योग्य सतही भूमि बहती चली जा रही है, जो अत्यधिक चिन्ता का विषय है। बड़े पैमाने पर बहने वाली मिट्टी बॉधों, जलाशयों, तालाबों, झीलों, नदियों आदि में जमा होती चली जा रही है, या फिर बहकर समुद्र में पहुँच रही है। बाँध–जलाशय–झील, नदियों में मिट्टी जमा होने से प्रतिवर्ष थोड़ी सी वर्षा से भी, बाढ़ें आती रहती हैं, जो पानी के बहाव के आसपास के कृषि योग्य भूमि की सतही ऊपजाऊ मिट्टी को बहाकर समुद्र की भेंट चढ़ा देती हैं। 1981-82 में बंगाल की खाड़ी में एक द्वीप उभरकर आया, जिसे 'पूर्वाशा नाम देकर भारत ने उस पर अपना झंडा लहरा दिया, इसकी तत्कालीन लम्बाई 11 किमी० तथा चौड़ाई 24 किमी० थी। यह द्वीप कुछ और नहीं, नदियों द्वारा लायी गयी गाद थी, जिसका निर्माण गंगा तथा ब्रहमपुत्र ने किया।

मूलतः देखा जाय तो, मिट्टी एक अजीवित नहीं बल्कि एक जीवन्त पदार्थ है। मिट्टी के अन्दर भी एक भरपूर, विविधता पूर्ण और जीवन्त संसार है। सूक्ष्म जीवों के इस संसार के अधिसंख्य जीवों को खुली आँखों से देख पाना सम्भव नहीं है।

माटी की पारिस्थितिकी तन्त्र की विविधता एवं गुणवत्ता को जानने के लिए मिट्टी की जैविक जटिलता को जानना अति आवश्यक है। वन, समुद्र, वायु अथवा कोई अन्य इकोसिस्टमों (पारिस्थितिकी तन्त्र) के समान ही, मिट्टी के पारिस्थितिकी तन्त्रों पर असन्तुलन के कारण, प्रभाव पड़ता है। यह असन्तुलन शहरीकरण, खुदान, रोड–सड़क निर्माण, आदि किसी भी कारण से हो सकता है। कहने का अभिप्राय है, कि मिट्टी के साथ मानव द्वारा अप्राकृतिक ढंग से अथवा प्रकृति द्वारा की गयी छेड़छाड़ अथवा उसकी संरचना परिवर्तन के कारण, वह खतरनाक ढंग से

प्रभावित होती है, उसमें पाया जाना वाला जैविक संसार नष्ट होता है। मिट्टी में उपलब्ध सूक्ष्म जीवों का, जिस गति से ह्रास होता है, उसी गति से धरती के ऊपर के पेड़–पौधे, वनस्पतियों एवं जन्तुओं का भी ह्रास होने लगता है। इस आधार पर स्पष्ट है कि, मिट्टी के पारिस्थितिकी तन्त्र का, धरा के पारिस्थितिकी तन्त्र के साथ प्रत्यक्ष के साथ–साथ, अप्रत्यक्ष नाजुक सम्बन्ध भी हैं। इसी तरह धरा के ऊपरी पारिस्थितिकी तन्त्र में आये ऋणात्मक बदलाव का, कुप्रभाव, मिट्टी के इकोसिस्टम पर भी पड़ता है। यही कारण है, कि मिट्टी के अन्दर यदि कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है, तो उसका व्यापक असर मिट्टी के ऊपरी दुनियां पर भी पड़ता है। इसी तरह धरती के ऊपर की जैव विविधता सिमटती अथवा असन्तुलित होती है, तो उसका तत्काल मिट्टी की अपनी जैव विविधता पर भी विस्फोटक असर पड़ता है। यही कारण है, कि मिट्टी के जीवों की प्रक्रियाओं के मन्द पड़ते ही रेगिस्तानीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

अपने जीवों की जैविक प्रक्रियाओं का ही प्रतिफल मिट्टी की उर्वरा शक्ति है, जैविक प्रक्रियाओं के अनुपात में ही मिट्टी की उर्वरा शक्ति निर्भर करती है, जैविक विभव की कमी अथवा समाप्ति को मिट्टी की मृत्यु कहा जा सकता है। यही कारण है, कि भारत के ऋषि–मनीषियों ने कहा है–'मिट्टी का पोषण करो, पौधे का नहीं।' मिट्टी का पोषण होगा तो वह खुद ही पौधे का पोषण कर लेगी।'

मिट्टी की जैविक जटिलता को समझे बिना, मिट्टी पारिस्थितिकी तन्त्र की, गुणवत्ता को समझ पाना आसान नहीं है। मात्र एक ग्राम उर्वरा मिट्टी में, नब्बे करोड़ जीवाणु, पाँच लाख एक्टीमोइसिटीज की कोशिकाएं तथा पाँच सौ मीटर के बराबर हाइफी (कवक के धागे) के अतिरिक्त, हजारों लाखों शैवाल कोशिकाएं, विषाणु, आर्थोपोड, निमेटोडू तथा अन्य प्रकार के कई जीव पाये जाते हैं। इसके अलावा मिट्टी में जीवनोपयोगी आक्सीजन भी समुचित मात्रा में पायी जाती है। मिट्टी कार्बन को टिकाने लगाने के लिए एक सिंक के रुप में भी सबसे प्रभावशाली माध्यम की तरह काम करती है। मिट्टी के अन्दर

की दुनियां जितने सुन्दर ढंग से फलती–फूलती रहेगी धरती की सतह पर निवास करने वाला जीवन तथा वनस्पतियाँ उतनी ही खुशहाल होंगी। वास्तव में जीव जगत के लिए मिट्टी अनमोल है।

1968 में प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री शेलडान जडसन ने अपने अध्ययन मे बताया–कि दुनियाँ में कृषि शुरूआत से पूर्व प्रतिवर्ष नदियों द्वारा 70 करोड़ टन मिट्टी महासागरों को भेंट चढ़ा दी जाती थी, जो कृषि प्रारम्भ होने बाद बढ़कर दो सौ चालीस करोड़ टन हो गयी।

प्रकृति 100 से चार सौ वर्ष तक का समय, मात्र 10 किमी० टाप स्वायल (ऊपरी मृदा) बनाने में लगाती है। इस आधार पर स्पष्ट है, कि मात्र 30 सेमी० ऊपरी मृदा बनने में 3000 से 12000 वर्ष का समय लगता है। मिट्टी एक अनवीनीकृत्त अनमोल सम्पदा है, जिसका एक बार क्षरण हो जाय तो फिर उसकी भरपाई असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

1995 में किये गये एक अध्ययन के आधार पर भारतवर्ष की लगभग 60 प्रतिशत भूमि भूक्षरण की शिकार है। इसके 33 करोड़ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में से 1-5 करोड़ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में भूक्षरण बढ़ता ही चला जा रहा है। इसके अलावा बाढ़, लवणीयता, क्षारपन के कारण अतिरिक्त 27,000 वर्ग किमी. क्षेत्र का क्षरण हो रहा है। एक अनुमान के आधार पर केवल 8,00,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र से प्रतिवर्ष 6000 टन मिट्टी बरबाद हो रही है जिसके साथ साढ़े लाख टन पोषक तत्व प्रतिवर्ष बहकर बरबाद हो रहे हैं।

दुनियाँ में उपजाऊ जमीन का क्षेत्र 1995 तक मात्र 14 करोड़ वर्ग किलोमीटर है। इस क्षेत्रफल को दोगुना किया जा सकता है परन्तु मुख्य समस्या तो यह है, कि जो भूमि कृषि के लिए प्रयुक्त की जा रही है, उसे कंकरीट के जंगलों व भूक्षरण से कैसे बचाया जाय, क्योंकि जो वर्तमान में उपलब्ध भूमि है, वह लगातार सिमटती चली जा रही है। मानव द्वारा किये जा रहे भूमि विदोहन के साथ–साथ बाढ़, सूखा, लवणीय क्षरण, नीची जमीन, जलाक्रान्ति, व्यापक खारापन, पोषक तत्वों की कमी,

विषाक्तता आदि भी कृषि योग्य भूमि के दुश्मन हैं। इसके बचाव के साथ ही मिट्टी में उपस्थित उपयोगी जीवन जन्तुओं, का पोलिनेटरों, केंचुओं आदि की जीव रक्षा भी आवश्यक है।

भूमि में रसायनिक कीटनाशक दवाओं के अन्धाधुन्ध प्रयोग के कारण कीटों की अवरोधकता भी बढ़ी है। 1983 से 1995 तक कीटनाशकों के प्रयोग से अवरोधक कीटों की संख्या में दोगुनी वृद्धि हो गयी है तथा इन रसायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से मिट्टी में उपलब्ध उपयोगी जीव जन्तुओं का विनाश भी हो रहा है, यह स्थिति खतरनाक कही जा सकती है।

खेती एवं पैदावार के लिए नदियों एवं सिंचाई के अन्य संसाधनों का अपना एक विशेष महत्व है, लेकिन जल कुप्रबन्ध के कारण ये सिंचाई नहरें आदि वरदान की जगह अभिशाप बन जाती हैं। यह स्थिति तब आती है, जब सिंचाई के संसाधनों के कारण ऊपजाऊ खेती में पानी का जमाव होकर मिट्टी में खारेपन की विकट समस्या प्रारम्भ हो जाती है।

कृषि वैज्ञानिक डा. एम.एस. स्वामिनाथन् का कहना है, कि "सिंचाई का प्रतिफल अमिश्रित नहीं रहा है।" अनेकों सिंचाई परियोजनाओं में सिंचाई प्रारम्भ होने के कुछ ही वर्षों बाद पानी एवं खार के जमाव जैसे दोष पाये गये, इससे अनेकों किसानों को लाभ की बजाय हानि उठानी पड़ी।"

प्रायः यह देखा गया है, कि नहर वाले इलाकों में भूमि समतल अधिक होती है, इन समतल क्षेत्रों में सिंचाई के कुछ ही वर्षों बाद भूमि में पानी व खार का जमाव दिखाई देना प्रारम्भ हो जाता है। इसके प्रमुख कारण नहरों द्वारा भूमि की सिंचाई क्षमता से अधिक पानी छोड़ा जाना, सिंचाई की ठोस व्यवस्था न होने से पानी का रिसना व निथरना, विकास की लचर व्यवस्था, नहरों की दीवालों का न होना अथवा ठोस न बनाया जाना, नालियों की दिवालों की जीर्ण शीर्ण स्थिति, भूमि और पानी में सामन्जस्यात्मक परिणाम की कमी आदि हैं।

खाड़ियों एवं समुद्र के किनारों के आसपास स्थित लगभग 65 लाख हैक्टेयर भूमि पहले से मृतप्रायः हो चुकी है, लगभग 1 करोड़ हेक्टेअर से अधिक भूमि जल कुप्रबन्धन के कारण खार

और पानी के जमाव की चपेट में आ चुकी है। सिंचाई नहरों के कारण अधिसंख्य क्षेत्रों में भूमिगत जल का स्तर लगातार ऊपर उठता चला जा रहा है, जो भूमि विनाश अथवा भूमि--प्रदूषण के लिए एक भयानक खतरे की घंटी है। सिंचाई कुप्रबन्ध ही वास्तव में खार और पानी के जमाव का प्रमुख कारण है। खेतों के मध्य ठोस नालियाँ न बनाया जाना भी इस समस्या की जड़ है। खेतों में एक खेत से दूसरे खेत में पानी बहाया जाता है, यह प्रक्रिया आखिरी हिस्से तक सिंचाई होने तक बदस्तूर जारी रहती है, जिस कारण अधिसंख्य खेतों में जरुरत से ज्यादा पानी जमा हो जाता हैं, सिंचाई के कुप्रबन्ध के कारण भूमि के सतह पर, सोडियम, कापर, जस्ता, ताँबा, बोरोन, जिंक, लोहा, मालब्डिनम आदि धातु तत्वों का जमाव हो जाता है, सोडियम का जमाव खेती के लिए एक अभिशाप के समान है।

करनाल के 'सेंट्रल सलाइनिटी रिसर्च इन्सीट्यूड' ने खारे भूमि के सुधार के लिए एक कारगर उपाय खोज निकाला है, जिसके तहत जमीन की हालत को देखते हुए, प्रति हैक्टेयर भूमि में 2 से 15 टन जिप्सम डाला जाता है, उसके बाद समुचित पानी और खाद डाली जाती है, जिससे सोडियम भूमि के अन्दर गहराई तक चला जाता है और इस तरह खार भूमि को पुनः कृषि योग्य बनाया जा सकता है। करनाल के उक्त रिसर्च इन्सिट्यूड की यह विधि पर्याप्त कारगर साबित हुई है। कृषि क्षेत्र में इस प्रकार की मृत भूमि को सुधारने के अन्य अनुसन्धान भी चल रहे हैं, लेकिन बेहतर यही होता, कि इलाज करने के बजाय इससे पूर्व में ही बचाव कर लिया जाए। सरकार का विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा स्थापित रिसर्च सेन्टर लगातार ऐसे पेड़ों की खोज कर रहा है, जो खार युक्त भूमि में पैदा हो सकते हैं।

विस्तृत अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ, कि बड़े बाँधों के निर्माण तथा उससे निकलने वाली नहरों से भी भूमि प्रदूषण में अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी हुई है, धातु तत्वों, खार एवं पानी के जमाव जैसी समस्याएं लगभग समस्त बाँध क्षेत्रों में व्याप्त हैं।

हमारे देश भारत वर्ष की तीन चौथाई से अधिक भूमि में वनस्पति उपयोगी पोषक तत्वों की भारी कमी है। 1982 से पूर्व

भारत में मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा के सन्दर्भ में 365 जिलों की भूमि के 92,00,000 नमूनों का 250 प्रयोगशालाओं में परीक्षण किया गया, जिसमें पाया गया कि 228 जिलों में नाइट्रोजन की मात्रा काफी कम, 119 जिलों में मध्यम तथा मात्र 18 जिलों में नाइट्रोजन की बेहत्तर मात्रा पायी गयी। इसी तरह भूमि में फास्फोरस की मात्रा के एक अन्य परीक्षण में 46 प्रतिशत जिलों में फास्फोरस काफी कम, 52 प्रतिशत जिलों में मध्यम तथा मात्र 2 जिलों में ठीक मात्रा पायी गयी। भूमि में पोटेशियम की मात्रा के सन्दर्भ में 1968 से 1974 के बीच 310 जिलों से इकट्ठे किये 45 लाख नमूनों के परीक्षण से पता चला कि 20 प्रतिशत भाग में पोटेशियम काफी कम, 42 प्रतिशत में सामान्य तथा 38 प्रतिशत भाग में बेहतर पायी गयी। अतः पोषक तत्वों की कमी की पूर्ति के लिए रसायनिक खादों पर निर्भर रहना पड़ता है। रसायनिक खादों पर निर्भरता जमीन की उर्वरता के लिए बेहत्तर नहीं कही जा सकती है।

डा. आई.एस. कवर के एक अध्ययन के अनुसार, 1980-81 में भारत वर्ष में 55 लाख टन फास्फोरस, पोटेशियम तथा नाइट्रोजन (एन.पी.के.) का उपयोग कर 13 करोड़ टन अन्न उत्पादन किया गया। अन्न की इस मात्रा के कारण भूमि से एक करोड़ अस्सी लाख टन पोषक तत्व निचोड़ लिये गये। डा. कवर का यह भी मानना है, कि 50 लाख टन पोषक तत्व सेन्द्रिय पदार्थों द्वारा भूमि को वापस कर दिये गये जबकि रसायनिक खाद के रुप में धरती को 55 लाख टन पोषक तत्व दिये गये। इस आधार पर भूमि के 75 लाख टन पोषक तत्वों का उपज से ह्रास हुआ।

उक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि हम प्रतिवर्ष भूमि के पोषक तत्वों का लगातार विदोहन कर रहे हैं, तब यह भी आंकलित किया गया था, कि इसके अलावा पानी के क्षरण के कारण प्रतिवर्ष भारत की भूमि 84 लाख टन एन.पी.के. की अतिरिक्त नुकसान झेल रही है। खेती अथवा वनस्पतियों, पौधे धरती से केवल एन.पी.के. ही नहीं शोषित करते, बल्कि उसके साथ, ताँबा, जिंक, बोरोन, लोहा, मैगनीज और मालवडेनम जैसे शूक्ष्म तत्वों के साथ–साथ दोयम पोषक तत्वों, गन्धक (सल्फर) कैल्शियम, मैगनीशियम आदि तत्वों

का उपयोग करते हैं इस आधार पर भी स्पष्ट है, कि बची–खुची कृषि योग्य भूमि पर हम जिस तरह फसलों को बोकर धरती के पोषक तत्वों को निचोड़ रहे हैं, यह स्थिति बदस्तूर जारी रहने पर बहुत जल्दी हमारी कृषि योग्य भूमि पोषक तत्वों से विहीन हो जायेगी।

1968-70 के मध्य पंजाब में भूमि में जिंक की कमी पायी गयी थी। 1982 के आसपास लौह तथा मैगनीज की कमी भी स्पष्ट परिलक्षित होने लगी थी। इसी दौरान किये गये एक अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि समूचे भारतवर्ष में सामान्यतया 47 प्रतिशत भूमि में जिंक, 11 प्रतिशत में लौह की कमी तथा 5 प्रतिशत भूमि में जिंक की कमी दृष्टिगोचर हुई थी। अम्लयुक्त भूमि में मैगनीज व चूने की कमी के साथ सघन खेती वाली भूमि में अनेक स्थानों पर गन्धक की कमी भी पायी गयी थी।

वैज्ञानिकों का मानना है, कि उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में वन विनाश के कारण भूमि के सेन्द्रिय तत्व, बिना धरती को छेड़े ही, 20 से 60 प्रतिशत तक प्रतिवर्ष समाप्त होते जा रहे हैं। बाढ़ वाले मैदानी भूमि में बाढ़ के कारण बहकर आने वाली मिट्टी में भी सेन्द्रिय तत्वों की भारी कमी देखने को मिली। सेन्द्रिय तत्वों की कमी की पूर्ति के लिए अति आवश्यक है, कि धरती को सेन्द्रिय खाद भी रसायनिक खादों के साथ–साथ भरपूर मात्रा में दी जाये। सेन्द्रिय खाद संरक्षण हेतु फसलों के अवशेष एवं गोवर की खाद का जलावन जैसे कार्यों में दुरपयोग को पूरी तरह रोका जाना चाहिए। मल–मूत्र का उपयोग भी समुचित रुप से नहीं किया जाता है, जिस कारण ये भूमि को सेन्द्रिय तत्व लौटाने के बजाय उसे प्रदूषित करते हैं तथा व्याधियाँ उत्पन्न करते हैं। फसल के अवशेषों का जलाने अथवा बरबाद करने के बजाय यदि उसे पुनः धरती में जोत दिया जाय, तो इससे भूमि में सेन्द्रिय पदार्थों की काफी मात्रा में वापसी सम्भव है। अतः भूमि की उर्वरकता को बनाये रखने हेतु आवश्यक है, कि भूमि से जिस मात्रा में पोषक तत्व खींचे जाय; उन्हें सेन्द्रिय एवं रसायनिक खादों के रूप में धरती को लौटा दिया जाए। सेन्द्रिय खाद नालों–नदियों में न बहाकर, गड्ढ़ों में न दफनाकर तथा धुँए के रुप में न उड़ाकर

पर्यावरण सन्तुलन के लिए भूमि को लौटा देना आवश्यक है, अन्यथा भूमि–प्रदूषण व भूमि विनाश के चलते धीरे–धीरे धरती खार एवं रेगिस्तान बननी प्रारम्भ हो जायेगी।

1982 से पूर्व 'नेशनल काउंसिल ऑफ अप्लाइड इकानामिक रिसर्च' के द्वारा किये एक अनुसन्धान के आधार पर बताया गया है कि भारतवर्ष में प्रतिवर्ष 193 करोड़ 50 टन गोबर पैदा होता है जिसका मात्र पच्चीस प्रतिशत से भी कम भाग ही सेन्द्रिय खाद के रुप में प्रयुक्त किया जाता है, शेष अन्य संसाधनों में उपयोग में लाया जाता है तथा कुछ भाग बरबाद भी हो जाता है। यदि इस समस्त गोबर को खाद के रूप में प्रयुक्त किया जाता तो उससे लगभग 13 लाख टन फास्फोरस, 20 लाख टन पोटेशियम, तथा 27 लाख टन से अधिक नाइट्रोजन, प्रतिवर्ष भूमि को मिलता। उक्त रिसर्च संस्थान ने यह भी अवगत कराया, कि प्रति वर्ष शहरों से निकलने वाले एक करोड़ पचास लाख टन कचरे से बेहतरीन कम्पोस्ट खाद बनायी जा सकती है। इसी प्रकार मुर्गियों के बीट व कचरे से सालाना 3 लाख टन नाइट्रोजन, 3 लाख टन फास्फोरस तथा 14 लाख टन पोटेशियम प्राप्त किया जा सकता है। इसके अलावा भेड़ बकरियों की लगभग पांच–छः करोड़ जनसंख्या से उनकी मिंगनी से 10 लाख टन नाइट्रोजन, 5 लाख टन फास्फोरस तथा 9 लाख टन पोटेशियम मिल सकता है। ठीक इसी तरह बड़े शहरों के नालों व कचरे से 33 हजार टन नाइट्रोजन, 7000 टन फास्फोरस और 20 हजार टन पोटेशियम पैदा किया जा सकता है। इन सबके अतिरिक्त मांस प्रयुक्त जानवरों आदि के अवशेष, हड्डियों, मछली का कचरा, पक्षियों–जानवरों की बीट, मल–मूत्र, खेती के अवशेष पुआल, घास, छीलन आदि को खाद बनाने में प्रयुक्त कर, अतिरिक्त 56 लाख टन नाइट्रोजन, 23 लाख टन फास्फोरस तथा एक करोड़ 7 लाख टन से अधिक पोटेशियम प्राप्त किया जा सकता है। इस आधार पर स्पष्ट है, कि भारतवर्ष में सेन्द्रिय खाद की कोई कमी नहीं है, कमी है तो मात्र उसके प्रबन्धन व समुचित सदुपयोग की। रसायनिक खाद के साथ ही सेद्रिय खाद भी भूमि के लिए अत्यन्त आवश्यकीय है बल्कि यह कहा जाय–कि रसायनिक खाद

से सेन्द्रिय खाद की उपयोगिता अधिक है तो यह कोई अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा, क्योंकि सेन्द्रिय खाद में प्रमुख एवं शूक्ष्म दोनों प्रकार के पोषक तत्व विद्यमान होते हैं, यही कारण है कि इससे मिट्टी की उर्वरता पर सीधा असर पड़ता है। इससे भूमि के पानी को धारण की क्षमता–बढ़ती है तथा भौतिक गुणों की वृद्धि होकर मिट्टी की संरचना सुधरती है और परोक्ष रूप से मिट्टी की उर्वरता–गुणवत्ता में सुधार होकर भूक्षरण की प्रक्रिया अवरोधित होती है। यह भी अकाट्य तर्क है कि सेन्द्रिय खाद, भूमि में माइक्रोबायोलाजिकल प्रक्रिया एवं गतिविधियों को बढ़ाकर भूमि में फसलों की उत्पादकता में वृद्धि करती है।

भूमि प्रदूषण के बारे में जानने से पूर्व भारत वर्ष में मिट्टी की उपयोगिता एवं प्रकार पर संक्षिप्त चर्चा कर लेना उचित होगा। भारतवर्ष में मुख्यतः चार प्रकार की भूमि है। कृषि योग्य भूमि, चरागाह की भूमि, जंगल क्षेत्र की भूमि तथा उपजाऊ रहित, पथरीली, खार एवं रेगिस्तानी भूमि। भूमि प्रदूषण की चर्चा की जाय तो स्पष्ट होता है चौथे किस्म की खार व रेतीली भूमि तो उपेक्षित है ही, उसके बाद दूसरे नम्बर पर सर्वाधिक उपेक्षित है चरागाह युक्त भूमि। इसके बाद क्रम में आती हैं जंगल की भूमि तथा कृषि योग्य भूमि।

चरागाह युक्त भूमि पर सर्वाधिक असर अति चराई तथा जंगलों के विनाश से पड़ा। बिगड़ती नस्ल की मवेशियों की अत्यधिक जनसंख्या एवं अउन्नत प्रजातियों एव अधपेट दुर्बल–कमजोर पशुओं के कारण चरागाह की भूमि पर लगातार दबाव बढ़ता चला जा रहा है। जंगलों के लगातार हो रहे अवैध दोहन से भी चरागाह वाली भूमि पर अत्यधिक दबाव बढ़ा। देश की बढ़ती जनसंख्या ने लगातार चरागाहों पर अतिक्रमण कर उसे कृषि भूमि में परिवर्तित करने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी है। चरागाह वाली भूमि का असंरक्षित, असंवर्धित होना, इसके विकास एवं संवर्धन पर कोई ध्यान न देकर उसे उपेक्षित छोड़ देने की हमारी भूल से भी लगातार अधिसंख्य चरागाह वाली भूमि प्रदूषित होकर रेतिली होनी प्रारम्भ हो चुकी है।

भारत वर्ष में भूमि प्रदूषण एवं भूमि विनाश में खनन उद्योग

का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है। आदिम युग के बाद सभ्यता की ओर बढ़ता मानव तब से अब तक लगातार भूमि के विदोहन में जुटा पड़ा है। खदान क्षेत्र में भूमि में बड़े—बड़े गड्ढ़े बनाकर भूमि को खोखला ही नहीं किया जाता है बल्कि उसके आस—पास की भूमि भी बंजर होकर मृत प्रायः हो जाती है। कोयले की खानों वाले क्षेत्र में सर्वत्र, काला ही काला, गेरू व रामरज के खदानों वाला क्षेत्र लाल—पीला, स्लेट खुदाई क्षेत्र का रंग भूरा, लोहे का खदान क्षेत्र लाल ही लाल, चूना—खड़िया खनन क्षेत्रों में चारों ओर श्वेत चादर ही बिछी दृष्टिगोचर होती है। कहने का आशय है, कि खुदान किये जाने वाले धातु—पदार्थ के रंग में क्षेत्र की काफी भूमि रंगीन होकर अपनी समस्त उर्वरा एवं सजीवता के गुणों को खो देती है।

खनन मुख्यतः दो रूप में किया जाता है भूमिगत खुदाई तथा खुली खुदाई। भूमिगत खुदाई के अन्तर्गत, कोयला, कच्चा लोहा, बाक्साइड आदि की खुदाई आती है जबकि खुली खुदाई में भवन, सड़क व अन्य निर्माण कार्य, ईंटों आदि के लिए की गयी खुदाई आती है। धूल में सर्वत्र, वायु, भूमि, जल में छा जाने की क्षमता पायी जाती है। अतः खनन से पर्यावरण के उक्त तीनों महत्वपूर्ण अंग प्रदूषित हो जाते हैं, खान के आस पास रहने वाले, मानव, जीव जन्तु, वनस्पतियाँ तथा खनन कार्य में लगे मजदूर इससे सर्वाधिक प्रभावित होते हैं, खनन कार्य खेती एवं कृषि भूमि को विषाक्त कर बंजर बना देता है, वायु को प्रदूषित कर जल को जहरीला बना देता है।

खनन क्षेत्र में खनन से पूर्व उस स्थल के, वन, पत्थर, मिट्टी को हटा दिया जाता है। खनिज सम्पदा तक पहुँचने के लिए किये जाने वाले विस्फोट से भी पर्यावरण को खतरनाक ढंग से हानि पहुँचती है। आधुनिक भौतिकवादी युग में खनन के लिए प्रयुक्त होने वाली वर्तमान भीमकाय मशीनें, धरती का कचूमर निकालने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ती हैं, इनमें अल्प समय में ही धरती को विकृत करने की पूरी क्षमता है।

खनन क्षेत्र तो खनन से बरबाद होता ही है, साथ ही ढुलाई, भण्डारण आदि कार्यों से भी पर्यावरण को बहुत अधिक नुकसान

पहुँचता है। कच्चे माल की अधिक उपलब्धता, कर चोरी, लम्बे ढुलान से मुक्ति जैसे कारणों के चलते अधिसंख्य खदान क्षेत्रों के आस पास ही खनन से सम्बन्धित फैक्ट्रियाँ, कारखाने लगाये जाते हैं, जो खदान से प्रदूषित पर्यावरण को और अधिक विनाश के कगार पर ला खड़ा करते हैं। हमारे देश भारतवर्ष में अधिसंख्य खनन कृषि योग्य भूमि एवं वन क्षेत्र में किया गया है, जिससे इन अति महत्वपूर्ण भूमि का बुरी तरह विदोहन हुआ है।

खनन क्षेत्र में भूमि का जमकर विदोहन तो होता ही है, पर उससे अधिक विदोहन खनिज उपयोग के संसाधनों के कारण होता है, जिसके अन्तर्गत, रज्जू, मार्ग, सड़कें, रेलमार्ग, प्रशासनिक कार्यों हेतु प्रयुक्त इमारतें, भण्डार, मजदूरों–कर्मचारियों के लिए आवासीय मकान तथा खदान से बेकार निकली चीजों का विसर्जन आदि आता है। खुद योजना आयोग की एक पर्यावरण रिपोर्ट ने अवगत कराया है, कि बिक्री योग्य एक टन कच्चे लोहे के साथ दो टन फालतू चीजें निकालकर फैंकनी पड़ती है। अतः यह खदान का कचरा भूमि व वायु के साथ–साथ पानी को भी बुरी तरह प्रदूषित करता है, बरसात में यह नालों, नदियों के साथ बहकर दूर–दूर तक के पर्यावरण को विषाक्त बनाकर उसे असन्तुलित कर देता है।

भूमिगत खदानों में भूमि धँसने की घटनाएं प्रायः घटती रहती हैं और प्रायः जमीन में बड़े–बड़े गड्ढे बन जाते हैं। खदान वाली भूमि पर अघोषित कर्फ्यू सा रहता है खदान क्षेत्रों में 'खतरनाक क्षेत्र', 'परित्यक्त क्षेत्र', 'प्रतिबन्धित क्षेत्र' जैसे बोर्ड लगाकर उन क्षेत्रों में इन्सानों और मवेशियों के आने जाने पर पाबन्दी लगायी जाती रही है, क्योंकि खदान धँसने आदि कारणों से कभी भी जान–माल के नुकसान की प्रबल आशंका बनी रहती है।

कोयला खदान क्षेत्रों में हमेशा आग लगने की दुर्घटना का भय बना रहता है। इसका प्रमुख कारण कोयले में पायी जाने वाली मिथेन गैस होती है, जो कोयला तोड़ते अथवा चूरा करते समय बाहर निकलती है, उसमें कभी भी आग़ भड़क सकती है। झरिया कोयला खदानों में लगी आग 56 सालों तक जलती रही थी। इससे अनुमानित तीन करोड़ सत्तर लाख टन से अधिक

कोयला जलकर भस्म हो गया, बताया जाता है, कि यह आग 1832 हेक्टेयर क्षेत्र में फैली थी। भूमिगत कोयले की खानों की आग बुझाना एक मुश्किल काम है, इसका एकमात्र उपाय है कि आग बुझाने हेतु सुरंग का मुँह बन्द कर दिया जाय तथा कोशिश की जाए कि कोयले की आग को वायु का संसर्ग न मिल पाये।

भारत वर्ष में भूमि के अन्दर पाये जाने वाले खनिज ईंधनों तथा धातुओं के भण्डारों की उपलब्धता सर्वत्र समान नहीं है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण खनिज भण्डार देश के पूर्वी एवं मध्य भूभाग के लगभग चालीस जिलों में हैं, जबकि अ–धातु श्रेणी का कच्चा माल लगभग सर्वत्र उपलब्ध है। देश में सर्वाधिक खदान जंगल–क्षेत्रों में हैं, इसलिए इन क्षेत्रों में वन सम्पदा का अत्यधिक विनाश के साथ–साथ भूक्षरण एवं भूमि धँसने की प्रकिया सर्वाधिक है। 1982 के एक सर्वेक्षण के आधार पर, मात्र गोवा में खानों के लिए पट्टे पर दी गयी भूमि, कुल जंगल का 43 प्रतिशत से अधिक थी। सुरंग वाली खदानों में सुरंगों की छतों को लठ्ठों का सहारा दिया जाता है। जिसका अतिरिक्त बोझ भी वन क्षेत्रों पर पड़ता है। यों तो बीसवीं सदी के अन्तिम चरण तक खनन का कार्य लगभग पूरे भारतवर्ष में किसी न किसी रूप में व्याप्त हो चुका है। खनन से भूमि का भयंकर दोहन तो किया जाता है पर खनन क्षेत्र को सँवारने में कोई भी दिलचस्पी नहीं ले रहा है। जिस कारण भूमि लगातार विकृत्त एवं प्रदूषित होती चली जा रही है।

शासन एवं समाज यदि प्रयास करे तो खनन क्षेत्रों की पर्याप्त भूमि का पुनः संर्वधन किया जा सकता है। इसकी शुरूआत काफी पूर्व गुजरात में हो चुकी है। गुजरात के बड़ोदा बम्बई राजमार्ग के किनारे, जहाँ चीनी मिट्टी के खदान है तथा जो 200 एकड़ से अधिक भूमि में फैली है, खुद चुकी भूमि को, सजाया और सँवारा गया, जिस कारण वह एक खूबसूरत स्थल के रूप में विकसित हो चुका है। खनन से बने गड्ढ़ों को झील का रूप देकर उसमें मछलियाँ पाली जा रही हैं। इसके बीच में बनाये गये छोटे–छोटे टापू बहुत खूबसूरत लगते हैं। इन कृत्रिम झीलों के चारों ओर हजारों पेड़ लगाये गये थे, जो अब अदभुत प्राकृतिक छटा से

परिपूर्ण हो चुके हैं। इसी तरह यदि सभी स्थानों पर खनन के साथ–साथ भूमि संरक्षण एवं भूमि उपचार का कार्य चलाया जाए तो उससे खनन से परित्यक्त पर्याप्त भूमि को नया रूप दिया जा सकता है, परन्तु समस्या यह है, कि भूमि संवर्धन में न शासन प्रशासन रूचि लेना चाहता है और न ही खनन करने वाले ग्रुप ही इस कार्य को अंजाम देना चाहते हैं, क्योंकि उनका एकमात्र लक्ष्य होता है, अधिकाधिक मुनाफा कमाना, भले ही पर्यावरण को कितनी भी क्षति क्यों न उठानी पड़े, जबकि आदि मानव तक ने भूमि की उपेक्षा नहीं की थी। इसलिए उसने भूमि को माँ और स्वयं को उसके पुत्र के रूप में उद्घोषित किया था–'माता भूमिः पुत्रोअहं पृथिव्याः।'

भारत वर्ष में वैध खुदाई के साथ–साथ अवैध खुदाई भी जोरों पर है। खदानों से प्रत्यक्षतः होने वाली मजदूरों की मौत की दुर्घटनाएं भी लगातार घटती रहती है।

चरागाह क्षेत्रों का भयानक दोहन एवं अति चराई के कारण भी भूमि प्रदूषण, खतरनाक सीमा को पार कर गया है। पशुधन के मामले में अति सम्पन्न देश होने के कारण भी देश को अति चराई के दुष्प्रभावों को झेलना पड़ा है। 1990 से पूर्व की गयी एक अनुमानित सर्वे रिपोर्ट बताती है, कि विश्व के कुल थल क्षेत्र के हिसाब से चालीसवें स्थान पर आने वाले भारत वर्ष में दुनियाँ की 50 प्रतिशत से अधिक भैंसे, 15 प्रतिशत गाय–बैल, 19 प्रतिशत बकरियाँ व भेड़ें थी। इसके सिवाय जंगली जानवरों की संख्या भी करोड़ों में थी। पालतू एवं जंगली जानवरों की यह विशाल जनसंख्या ही अतिचराई के लिए सर्वाधिक जिम्मेदार है।

भारत वर्ष में लगभग एक करोड़ तीस लाख हैक्टयर भूमि ही चरागाह के रूप में वर्गीकृत है। पशु जनसंख्या के आधार पर मात्र इतनी चरागाह की भूमि पर्याप्त नहीं है। इसमें से भी अधिसंख्य भूभाग की अतिचराई, खनन, औद्योगीकरण, यातायात, अवैध कब्जों आदि के कारण, हालत बेहद चिन्तनीय है। चरागाह की भूमि की पर्याप्त कमी के कारण ही मवेशी, बंजर, परती एवं खेती योग्य भूमि तथा तीन करोड़ 60 लाख हैक्टयर जंगली भूभाग में जो कुछ मिल रहा है, उसे भी खा रहे हैं पशु स्वादिष्ट घास

को सर्वप्रथम हजम करने के बाद कम स्वाद वाले दूसरे नम्बर पर आने वाले चारे को भी चट करने लगे हैं, शेष बच जाता है, अखाद्य एवं विषैला चारा व घास।

बेहतर किस्म के चरागाह उन स्थानों पर पाये जाते हैं, जहाँ 12000 मि.मी. से अधिक वर्षा होती है। इसी तरह समशीतोष्ण प्रदेशों में भी खूब हरियाली पायी जाती है, इस तरह के चरागाह हिमालय के तटवर्ती क्षेत्रों में अधिक हैं। कुछ क्षेत्रों में चरागाह वृक्षविहीन हैं, तो कुछ क्षेत्रों में वृक्षोंयुक्त तथा कई क्षेत्रों के चरागाहों के साथ झाड़ियाँ भी उपलब्ध है। राजस्थान के प्रतिवर्ष 200 मि. मी. से कम वर्षा वाले चरागाह वृक्षविहीन चरागाहों के रूप में जाने जाते हैं। भारत ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण एशिया में वर्षा वाले स्थानों में जहाँ आज चरागाह उपलब्ध हैं। यदि उनमें मानव एवं पशुओं का बोझ नहीं होता, तो निश्चित रूप से वन क्षेत्र होते। बार–बार बाढ़ग्रस्त होने वाले, भूसंखलित क्षेत्र, दलदली भूभाग, कृषि के लिए मध्यम भूमि, प्रदूषण से कम विकृत भूमि, प्रायः छोटी घास वाले चरागाहों में परिवर्तित हो जाती है। सूखा–बाढ़, तीव्र-गर्मी, अवर्षा आदि कई कारणों से भी चरागाह के चारा वाले पौधे व घास प्रभावित होते रहते हैं। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है, कि वृक्षविहीन चरागाह से चारा मात्र तर अथवा नम मौसम में मिलता है, सूखे मौसम में चारे की उपलब्धता अत्यधिक कम अथवा बिल्कुल समाप्त हो जाती है।

भारत के पश्चिमी भूभाग के कम नमी वाले क्षेत्रों में जहाँ मात्र जुलाई से सितम्बर माह तक नमी रहती है और गर्मी में तापमान 48 से 50 डिग्री के आसपास पहुँचता है, झाड़ियाँ ही यहाँ की मूल बनस्पतियाँ हैं। अवैध दोहन के कारण यदि ये झाड़ियाँ नष्ट हो जाय तो पहाड़ी ढलानों में बरसात में होने वाली 800 से 1000 मि.मी. की वर्षा से सतही मिट्टी बहनी प्रारम्भ होती है और तब शुष्क एवं गर्मी के मौसम में उक्त भूमि रेगिस्तान में परिवर्तित होने लगती है। यही कारण है, कि ज्यादा सूखे एवं अधसूखे क्षेत्रों से लगातार हरियाली विकृत अथवा नष्ट हो रही है।

चरागाहों की नष्ट हो रही प्रक्रिया, चारे की कमी तथा पशुओं

की बढ़ती समस्या के कारण धरती पर अतिरिक्त बोझ पड़ रहा है। चारे की समस्या से निपटने के लिए भारतवर्ष में कोई ठोस नीति बनाकर उस पर अमल नहीं किया गया। जबकि अमरीका जैसे देश में 60 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि में मवेशियों के लिए मात्र चारा उगाया जाता है। परन्तु इसके विपरीत भारतवर्ष में चारा उगाने हेतु 1990 से पूर्व मात्र 5 प्रतिशत भूमि उपलब्ध थी। सिंचाई वाली भूमि में चारा उगाने की प्रक्रिया तो यहाँ नहीं के बराबर है। चारे की इस अतिरिक्त भारी कमी को दूर करने के लिए हमारे देश में अन्न प्राप्त करने के उपरान्त फसलों का अवशेष पुआल, भूसी, आदि को जानवरों के चारे के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। हरे चारे के अभाव में व अधूरा पेट चारे के कारण जानवरों का सही विकास नहीं हो पाता है, वे रूग्ण और कमजोर होकर भूमि पर भारस्वरूप रह जाते हैं।

1990 से पूर्व बैंगलूर की इंस्टिट्यूड ऑफ सोशल एण्ड इकोनोमिक चेंज के एक सर्वेक्षण के अनुसार, 76 प्रतिशत जनपदों में हरे एवं सूखे दोनों प्रकार की चारे की अनुपलब्धता 50 से 80 प्रतिशत थी। मिजोरम में हरे चारे की उपलब्धता एक प्रतिशत भी नहीं पायी गयी थी। यह स्थिति अत्यन्त चिन्तनीय है।

1990 से ही पूर्व की गयी एक अन्य सर्वेक्षण रिपोर्ट ने अपने अध्ययन में बताया है कि हिमालय क्षेत्र की बारह राज्यों में कुल भूमि 6 करोड़ 15 लाख हैक्टेयर है, जिसमें एक करोड़ 78 लाख हैक्टेयर भूमि में घने जंगल, 17 लाख हैक्टेयर भूमि में वुग्याल (ऊँचाई वाले चरागाह) हैं। वुग्यालों के कुल भूभाग का दो–तिहाई क्षेत्र मात्र हिमालय प्रदेश में है। ये 2500 से 3000 मीटर की ऊँचाई पर स्थित होने, तथा सम शीतोष्ण जलवायु होने के कारण घास के चरागाह हैं। यहाँ ऊँचे पेड़ उग नहीं पाते हैं, यदि कोई पेड़ उग भी आता है, तो हिमपात का शिकार हो जाता है। अतः इन चारागाहों का जीवित रहना मानव जन्य नहीं, बल्कि प्रकृति जन्य है। ये चारागाह लगातार अतिचराई से पीड़ित हैं। जिन चरागाहों में लगभग 2 करोड़ गाय–बैल, एक करोड़ भैंस, 30 लाख भेड़ तथा 60 लाख से अधिक बकरियाँ चरती हैं।

हिमालय के चरागाहों के सन्दर्भ में वनस्पति वैज्ञानिकों का

कहना है कि अत्यधिक चराई के कारण इस क्षेत्र की घास के गुणों में लगातार गिरावट आ रही है, जिसके कारण यहाँ के घास की अवनति चौथी अवस्था में पहुँच चुकी है। घास की चौथी अवस्था ही आखिरी अवस्था है। यही स्थिति रही तो वह दिन दूर नहीं, जब हिमालय क्षेत्र के इन चारागाहों का निशान ही मिट जायेगा और वह रेत के ढेर में बदलने में देर नहीं लगायेंगे। इधर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के उत्तराखण्ड की पहाड़ियों में नुकीले पत्तों वाली वनस्पतियों—चीड़, सफेदा, यूकेलिप्टस, देवदार आदि किस्मों के पौधे रोपण से इस क्षेत्र के चारागाहों एवं चौड़ी पत्ती वाले चारापत्तियों की प्रजातियों के समूल विनाश की आशंका बन गयी है।

हिमालय के तटवर्ती क्षेत्रों तथा पर्वतीय क्षेत्रों में किये जाने वाले विकास कार्य, खनन, यातायात, भवन निर्माण कार्य से मिट्टी को काफी क्षति पहुँच रही है। मिट्टी की सतही खुदाई हो अथवा आन्तरिक खुदाई दोनों ही अवस्थाओं में, खदान वाली भूमि तो प्रभावित होती ही है, साथ ही खुदाई में निकली मिट्टी, तलहटी क्षेत्रों, ढलानों, नालों एवं नदियों के माध्यम से दूर–दूर तक भूमि विनाश का ताण्डव करती जाती है। खनन, यातायात आदि मामलों में की गयी ब्लास्टिंग से भूमि हिलती है तथा भूस्खलन, भूक्षरण की घटनाएं तेजी से बढ़ती हैं। इससे सिवाय पहाड़ों में होने वाले वनकटान, वनों का अवेध दोहन से भी भूमि और वनस्पति के सन्तुलनात्मक सम्बन्ध बुरी तरह बिगड़ गये हैं, जिसके फलस्वरूप मिट्टी वालुई होकर रेगिस्तान में परिवर्तित होने के लिए क्रियाशील है।

यह महत्वपूर्ण जानकारी देते हुए उत्तराखण्ड में पर्यावरण पर कार्यरत एक अग्रणी स्वयं सेवी संगठन 'पर्यावरण विकास समिति' ने उत्तराखण्ड में पाये जाने वाले चीड़ के पौधों को भी पर्यावरण एवं भूमि के लिए अभिशाप बताया है। संस्था ने अपने अध्ययनों से स्पष्ट किया है, कि चीड़ की पत्तियों (पीरुला) में एसिड पाया जाता है, जो भूमि की सतही मिट्टी को प्रभावित करता है। यह एसिड उस क्षेत्र के भूमि की सतही मिट्टी के साथ क्रियाशील होकर उसे छरछरा बनाकर बिखरा देता है, साथ

ही यह एसिड पेड़ों के नीचे घास तथा अन्य वनस्पतियों को समूल नाश करने की क्षमता रखता है। जिस कारण प्रतिवर्ष वर्षा के साथ उत्तराखण्ड के जंगलों की तीन इंच से लेकर पांच इंच तक की सतही भूमि की परत बहा रही है, यह भविष्य के लिए पूरी तरह खतरे की घंटी है।

'पर्यावरण विकास समिति' ने चीड़ पर किये अनुसन्धान एवं अध्ययन से स्पष्ट किया, कि इससे पिरूले से भूमि की क्रियाशीलता अत्यधिक बढ़ जाती है। समिति ने यह भी अवगत कराया, कि उत्तराखण्ड में सूतर (चौड़ी पत्ती वाले पेड़ों की पत्तियाँ, जिसे गोवर की खाद बनाने में प्रयुक्त किया जाता है) के लिए चौड़ी पत्ती वाले पेड़ों का निरन्तर दोहन होने के कारण वहाँ के लोग गोवर की खाद बनाने में अधिसंख्य मात्रा में चीड़ के पिरूले को प्रयोग में लाने लगे हैं, जिस कारण पर्वतीय क्षेत्र में मध्यम किस्म की पायी जाने वाली कृषि भूमि लगातार मृत प्रायः होती जा रही है। खेती योग्य सतही मिट्टी में पिरूले के कारण दीमक बढ़ने से भी वहाँ की खेती पकने से पूर्व कुम्हलाने लगती है, क्योंकि दीमक फसलों की जड़ों को निर्दयता से नष्ट कर देते हैं। इसके सिवाय, उत्तराखण्ड में अस्थिर, खोखले एवं कम उम्र के पहाड़ होने के कारण भूस्खलन की घटनाएं निरन्तर जारी रहती है, जिस कारण भी भूमि पर अतिरिक्त भार बढ़ता ही चला जा रहा है।

भूमि के लिए मानव जन्य खतरे बढ़ने के साथ–साथ प्रकृति जन्य विभीषिकाओं की भी कमी नहीं है। भूकम्प, पृथ्वी का घँसना, बिजली फटना, भूमि की भीतरी उथल-पुथल ऐसे कई कारण हैं जो सतही भूमि के लिए मँडराते खतरों को और अधिक बढ़ाते हैं। मानव की गलतियों से हो रहे मौसम परिवर्तन एवं सौर-चक्र की विविधता का भी व्यापक असर भूमि पर पड़ रहा है। इस खतरे से भी भूमि बची नहीं हुई है।

भौतिकवादिता की आड़ में पर्यावरण विनाश के लिए खड़े किये मानव निर्मित, बड़े–बड़े कल–कारखाने, उद्योग–धन्धे भी भूमि विनाश की प्रक्रिया में कहीं भी पीछे नहीं हैं। इन औद्योगिक समूहों से निकलने वाला कचरा भूमि का सबसे बड़ा दुश्मन है। युद्ध की विभीषिका, तथा भूमि पर रेडियमधर्मिता का खतरा भी लगातार

मँडरा रहा है। परमाणु बिजलीघर भूमि में रेडियमधर्मिता फैलाने हेतु अघोषित युद्ध छेड़े हुए हैं। जापान के हीरोशिमा एवं नागाशाकी की परमाणु विनाश की कहानी किसी से छुपी नहीं है। भविष्य में भी इस तरह के विनाशकारी युद्धों की आशंका से भी विश्व समाज मुक्त नहीं है। इन सब कारणों के चलते भूमि विनाश एवं भूमि प्रदूषण खतरनाक स्थिति को भी पार कर चुका है। मानव अभी भी इन खतरों को नहीं समझ पाया, तो वह दिन दूर नहीं, जब सम्पर्ण पृथ्वी एवं भूमि मृतप्रायः प्रदूषित गृह में परिवर्तित हो जायेगी।

भूमि विनाश एवं भूमि संवर्धन के महत्वपूर्ण अंग, मवेशियों की स्थिति पर चर्चा करना आवश्यक है। यह सभी जानते हैं, कि भूमि को मवेशियों के कारण सर्वाधिक उपयोगी सेद्रिय खाद मिलती है। यह भूमि को मवेशियों के मलमूत्र, मांस–हड्डियों आदि के द्वारा प्राप्त होती है। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है, कि कुल विश्व की मवेशियों की संख्या के आधार पर भारतवर्ष में मवेशियों की संख्या, भैंस 50 प्रतिशत, गाय–बैल 15 प्रतिशत, बकरी 15 प्रतिशत तथा भेड़ 4 प्रतिशत के लगभग हैं, जो पूरी दुनियाँ के किसी भी देश से सर्वाधिक है। पशुधन के मामले में इस देश को जहाँ सर्वाधिक पशुधन सम्पन्न देश की संज्ञा दी जा सकती है, वहीं दूसरी ओर नस्ल, गुणवत्ता, सक्षमता के आधार पर देश में मवेशियों की दुर्दशा पर रोना आता है। 'पर्यावरण विकास समिति' द्वारा 1995 में किये एक सर्वेक्षण से ज्ञात होता है, कि भारत की कुल मवेशियों की जनसंख्या के पच्चीस प्रतिशत से भी कम संख्या के मवेशियों को सन्तोषजनक आहार–चारा उपलब्ध हो पाता है। इस चारे की गुणवत्ता भी पूर्ण रूप से सम्पूर्ण नहीं कही जा सकती है, क्योंकि इसमें भी हरे चारे के साथ सूखे चारे की उपलब्धता रहती है। चरागाहों के सिमटने तथा भूमि की गुणवत्ता लगातार मध्यम होने से चारे की स्थिति लगातार बिगड़ती चली जा रही है। शेष 75 प्रतिशत में से 20 प्रतिशत मवेशियों को कामचलाऊ चारा व भोजन तथा शेष 55 प्रतिशत मवेशी लगभग भूखे पेट एवं अधपेट खाकर अपने जीवन का भार ढो रहे हैं। उत्तराखण्ड में किया गया उक्त संस्था का अध्ययन और

अधिक डरावना है। उत्तराखण्ड में मात्र पाँच प्रतिशत मवेशियों को ही भरपेट सूखा–हरा चारा उपलब्ध हो पाता है, शेष मवेशी अधपेट व भूखे ही रहते हैं या उन्हें जीवन की गाड़ी कुछ वर्ष और खींच लेने भर के लिए चारा मिल जाता है।

गायों की अपेक्षा बैलों की स्थिति लगभग पूरे देश में अच्छी है। इसका प्रमुख कारण बैलों द्वारा व्यवसायिक कार्य लेना है। नतीजन बैलों को हरा चारा दिया जाता है, जबकि अधिसंख्य मामलों में गायों को बचे खुचे चारे–तिनकों पर निर्भर रहना पड़ता है, यही कारण है, कि देश में प्रारम्भ से समान्तर जनसंख्या होने के बावजूद बड़े होने पर, गायों की संख्या बैलों के मुकाबले 20 प्रतिशत से कम हो जाती है। ये मरने वाली गायें कुपोषण, देखरेख की कमी व भूख से मरती हैं।

मवेशियों में व्याप्त भुखमरी, चारे की कमी, अउन्नत एवं घटिया नस्ल को देखते हुए स्पष्ट है कि देश में पर्याप्त मात्रा में मवेशी धरती पर भारस्वरूप हैं। बेहत्तर तो यही होता है कि इन भूखे मर रहे–कमजोर मवेशियों को किसी अन्य तरीके से खत्म कर दिया जाता, पर यहाँ पर 'गौमाता'–बैल भईया'–'बछड़ी बहिन जी' जैसी विचारधाराएं आड़े आ जाती हैं। आज आवश्यकता इसी बात की है, कि जरूरत भर उन्नत किस्म के तथा हृष्ट–पुष्ट मवेशियों को रखा जाय और शेषों को ठिकाने लगाने का कार्य किया जाय। इसके लिए हमें अपनी मानसिकता एवं धार्मिक अवधारणाओं को परिवर्तित करना होगा। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि 'गाय मईया और बैल भईया' जैसे उद्‌बोधनों के साथ–साथ समाज का भी उनके प्रति कुछ कर्तव्य बनता है। समुचित व्यवस्था व सम्पूर्ण चारे–भोजन का इन्तजाम की जिम्मेदारी भी समाज की होती है, उन्हें भूखे रखते हुए जीते–जी न मारा जाय तथा घुट–घुट कर, घिसट घिसटकर मरने के लिए न छोड़ा जाए। जनसंख्या की स्थिति मनुष्यों में ही नहीं मवेशियों में भी विस्फोटक हो सकती है। भारतवर्ष में आज ठीक वही स्थिति है–जब भगवान का दिया दुर्लभ मानव जीवन (भ्रूण-हत्या) नष्ट करने में परहेज नहीं, तो फिर मवेशियों की हत्या में परहेज कैसा? यह खोखला आडम्बर क्यों? क्या भ्रूण हत्या में नष्ट किये भ्रूण

बहिन जी, भाई जी, बेटे जी, बेटी जी आदि नहीं होते? मवेशियों के बारे में तो यह एक अच्छी बात है, कि विश्व समाज का अधिसंख्य समाज सम्पूर्ण प्रजाति के मवेशियों का मांस मांसाहार के रूप में ग्रहण करता है, अतः इन भारस्वरूप मवेशियों को ठिकाने लगाने में पर्याप्त मात्रा में विदेशी मुद्रा भी अर्जित की जा सकती है, इस प्रकार इन्हें ठिकाने लगाने में कोई समस्या भी नहीं आयेगी।

यहाँ पर यह आवश्यक है कि यदि हिन्दू जन–मानस की जन–भावनाएं भार बने मवेशियों को ठिकाने लगाने की अनुमति नहीं देता है तो उस स्थिति में यह आवश्यक है, कि मवेशियों की अतिरिक्त संख्या कम करने तथा घटिया नस्लों को ठिकाने लगाने के लिए नशबन्दी कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए, ताकि भूमि पर बढ़ते मवेशियों के भार को सन्तुलनात्मक अवस्था तक पहुँचाया जा सके। 'तेल बचाओ', 'गाय–बचाओ', 'वन्य-जन्तु-बचाओ' जैसे अभियानों को चलाने से पूर्व आज प्रमुख आवश्यकता 'भूमि बचाओ' आन्दोलन चलाने की है, क्योंकि जब भूमि ही नहीं बचेगी, तो उस पर आश्रित कैसे बच पायेंगे?

बहिन जी, भाई जी, बेटे जी, बेटी जी आदि नहीं होते? मवेशियों के बारे में तो यह एक अच्छी बात है, कि विश्व समाज का अधिसंख्य समाज सम्पूर्ण प्रजाति के मवेशियों का मांस मांसाहार के रूप में ग्रहण करता है, अतः इन भारस्वरूप मवेशियों को ठिकाने लगाने में पर्याप्त मात्रा में विदेशी मुद्रा भी अर्जित की जा सकती है, इस प्रकार इन्हें ठिकाने लगाने में कोई समस्या भी नहीं आयेगी।

यहाँ पर यह आवश्यक है कि यदि हिन्दू जन–मानस की जन–भावनाएं भार बने मवेशियों को ठिकाने लगाने की अनुमति नहीं देता है तो उस स्थिति में यह आवश्यक है, कि मवेशियों की अतिरिक्त संख्या कम करने तथा घटिया नस्लों को ठिकाने लगाने के लिए नशबन्दी कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए, ताकि भूमि पर बढ़ते मवेशियों के भार को सन्तुलनात्मक अवस्था तक पहुँचाया जा सके। 'तेल बचाओ', 'गाय–बचाओ', 'वन्य-जन्तु-बचाओ' जैसे अभियानों को चलाने से पूर्व आज प्रमुख आवश्यकता 'भूमि बचाओ' आन्दोलन चलाने की है, क्योंकि जब भूमि ही नहीं बचेगी, तो उस पर आश्रित कैसे बच पायेंगे?

पर्यावरण सम्बन्धी पुस्तकें

1.	पर्यावरण और संस्कृति का संकट (पुरस्कृत)	डॉ० गोविन्द चातक
2.	पर्यावरण और लोक अनुभव (पुरस्कृत)	डॉ० हरिमोहन
3.	पर्यावरण प्रदूषण और इक्कीसवीं सदी (पुरस्कृत)	डॉ० सुजाता बिष्ट
4.	पर्यावरण शिक्षा	डॉ० सुजाता बिष्ट
5.	पर्यावरण और वन संरक्षण, समस्या और समाधान	सं० डॉ० अतुल शर्मा
6.	वन्य प्राणी और पर्यावरण	डॉ० चन्द्रशेखर आजाद
7.	गंगा और उसका पर्यावरण	डॉ० चन्द्रशेखर आजाद
8.	मध्य हिमालय में वनस्पति और पर्यावरण	डॉ० चन्द्रशेखर आजाद
9.	हिमालय का क्षेत्रिय स्वरूप और पर्यावरण	डॉ० एम०एस०एस० रावत
10.	पर्यावरण प्रदूषण के दुष्प्रभाव	उमेश राठौर
11.	पर्यावरण और ऊर्जा	उमेश राठौर
12.	पर्यावरण और वायु	उमेश राठौर
13.	पर्यावरण शिक्षा	उषा खुराना

तक्षशिला प्रकाशन

23/4762, अंसारी रोड, दरिया गंज, नयी दिल्ली-110 002